UNIVERSAL LIBRARY

OU_180759

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 S56 J Accession No. G. H. 2116

Author श्रीकृष्णदास

Title जुलेखा १९४५

This book should be returned on or before the date last marked below.

# ज़ुलेख़ा

[ इतिहास के आधार पर प्रगतिशील उपन्यास ]

श्रीकृष्णदास एम० ए०

मातृ-भाषा-मन्दिर,
दारागंज, प्रयाग

प्रकाशक
पं० हर्ष वर्द्धन शुक्ल
मातृ-भाषा-मन्दिर,
दारागंज, प्रयाग।

प्रथमावृत्ति : अगस्त १९४५
१।।।)

मुद्रक
प्रेम प्रेस,
कटरा, प्रयाग।

अपनी सरोज को जो
ज़ुलेख़ा का ही
प्रतिरूप है

## 'ज़ुलेख़ा' के सम्बन्ध में—

सांस्कृतिक समन्वय और अटूट आपसी एकता के चरम विन्दु तक पहुँच जाने के बाद भारतीय जन जीवन का पराभव हुआ। पराधीनता ने धीरे धीरे हमारे समाज को विघटन की ओर अभिमुख किया।

मेरी 'ज़ुलेख़ा' केवल सौ वर्ष पहले की है। उस समय जहाँ एक ओर जन जीवन का आधार स्वस्थ और सबल था, वहीं उच्च श्रेणी के शासकों के आपसी कलह, नवागन्तुकों की अधिक वैज्ञानिक उत्पादन और वितरण की प्रणाली और उसी के अनुरूप शासन सत्ता पर क्रमशः अधिकार ने, अनेक भारतीय नरेशों को अपने सामने ज़ेर कर दिया। उठते-उभरते पूँजीवाद ने सँभल-सँभल कर गिरते, उठते और फिर गिरते सामन्तवाद को अन्तिम धक्का दिया और वह धराशायी हो धूल चाटने लगा।

'ज़ुलेख़ा', दीनू जुलाहे की बेटी, सामन्तवादी उत्पादन प्रणाली के अधबुझे दिये की अन्तिम लौ, आख़िरी ज्योतिकिरन है। हाँ, वह बुझते बुझते भी प्रतिशोध की चिनगारी को अवसाद की राख में छोड़ जाती है; इतिहास इसका साक्षी है।

'ज़ुलेख़ा' श्रीमती सरोजिनी देवी और साथी चन्द्रकुमार के सतत सहयोग का ही फल है।

श्री गयाप्रसाद तिवारी बी० काम० जैसे कर्मठ मित्र और श्री हर्ष वर्द्धन शुक्ल जैसे प्रकाशक को पा कौन सा लेखक उत्साहित न होगा!

श्रीकृष्णदास

सावन भादों की साँझ जवान लड़कियों के लिये भारी हो जाती है। उनकी उदासी बढ़ जाती है। नैहर में रहीं तो साजन की याद, ससुराल की बातें दिल को कुरेदने लगती हैं। ससुराल में रहीं तो प्रीतम के देर में वापस लौटने पर कोसते बीतती है। चैन किसी तरह नहीं। कहीं भी रहें उन्हें किसी कमी का ही अनुभव होता है। अगर ब्याहता न हुईं और यौवन गदराया रहा तो ज़िन्दगी और भी ज़्यादा दूभर हो जाती है। मन में कुछ होता रहता है लगातार, लेकिन क्या होता रहता है यह समझ में नहीं आता। किसी काम में मन नहीं लगता। दिल भारी भारी लगता है जैसे उसपर कुछ बोझ हो।

जुलेख़ा की यही दशा थी। जुलाहे की बेटी, घर में और कोई नहीं। बूढ़ा बाप धीरे-धीरे अपना सब कुछ खो चुका था। फिरंगी व्यापारियों के आने और कम्पनी के राज के फैलने से उसका धन्धा चौपट हो चुका था। इधर खेतों पर मज़दूरी कर चार दाना अनाज ले आता और अपनी नूरचश्मी को खिला बचा खुचा ख़ुद अपने पेट में डाल, एक लोटा पानी चढ़ाकर सो रहता था। यही अनाज खाकर जुलेख़ा गाँव वालों और आस-पास के लोगों की आँखों में गड़ने लगी थी। उम्र कम थी—रही होगी कोई सोलह सत्रह साल की। लेकिन बदन गठीला था। सुडौल ऐसा था जैसे किसी कलाकार ने अपनी छेनी से तराश-तराश कर उसे गढ़ा हो। सुघर सलोना चेहरा जिससे दो चमकती, जड़ी हुई, बड़ी-बड़ी, रसीली आँखें झाँकती रहती थीं। बड़ी चंचल थीं ये आँखें। मादक थीं लेकिन पुतलियाँ नाचा करतीं।

अंग प्रत्यंग फड़कते रहते। ज़ुलेख़ा कुछ ऐसी थी कि बरबस लोगों की आँखें उस पर अटक जातीं।

कल जो कुछ होगा उसका ध्यान आते ही वह तड़प उठी। घर के पीछे वाले बाग़ में जा वह चुपचाप आम की लटकती डाली पर दूसरी डाली का सहारा ले अध-लेटी सी पड़ गई। उसकी गीली उदास स्वर लहरी फूट निकली :

किसी की याद आई जा रही है,
कोई सूरत समाई जा रही है।
किसी का दिल जलाया जा रहा है,
कोई शम्मा बुझाई जा रही है।

बार-बार इन पंक्तियों को दोहराती ज़ुलेख़ा थकती न थी। उसका दिल कहता वह गाती जाय। वह गाती जा रही थी। बार-बार उसकी आँखें डबडबा आतीं, बार-बार वह आँसू पी जाती और गा उठती :

किसी की याद आई जा रही है

ज्योति ने पीछे से आकर आँखें बन्द कर लीं तो वह घबरा सी गई। बन्द आँखों को खोलने का प्रयत्न करती हुई कहने लगी,

"छोड़ दो बाबा, मैं पहिचान गई।"

"बोलो, बताओ मैं कौन हूँ ?"

"वही हो, वही,"

"कौन ?" दुलराकर मीठे स्वर में ज्योति बोली।

"जोत, मेरी आँखों की जोत, मेरी रानी।"

आँखें खुल गईं। दोनों खिलखिला पड़ीं। लेकिन ज़ुलेख़ा फ़ौरन ही रुक गई। निचले ओठों को दबा उसने ठंडी साँस ली और डबडबाई आँखें नीची कर लीं।

"क्या बात है रे, ज़ुली ?" स्नेह से ज्योति ने पूछा।

ज़ुलेख़ा कुछ न बोली। एक बार मन में आया कि वह सब कुछ कह दे लेकिन फिर वह दबा गई। ज्योति कुछ समझ न सकी। इसलिये फिर उसने पूछा, "अरे बतायेगी भी क्या हुआ, या यों ही मुँह लटकाये खड़ी रहेगी? यश की याद तो नहीं आ गई?"

"चल हट, तू भी बड़ी वैसी है जोत? यश फ़श से क्या मतलब? मुझे उनसे क्या लेना देना है? कहाँ वह बाम्हन ठाकुर, कीरतवान, कवि, ज़मीदार के दोस्त—कहाँ मैं जुलाहे की बेटी, घर में मिट्टी के टूटे बर्तन और टूटी चारपाई। उनके जोग मैं हूँ भी! उन्हें मेरी चिन्ता काहे को होने लगी?"

"लेकिन उस दिन जब घोड़े पर चढ़े चले जा रहे थे तब तेरी ओर देख तो रहे थे इतना घूर-घूर। कौन जाने। धन सम्पत्ति एक तरफ़ और दिल की मोहब्बत दूसरी तरफ़। तू क्या जाने इन बातों को? और, यशवन्त के नेक आदमी होने में क्या सन्देह? कोन उनको तारीफ़ नहीं करता। सभी की आँखों में तो वे चढ़े हुये हैं। कौन उन्हें अपनी बेटी देना नहीं चाहेगा? लेकिन इतना मैं जानती हूँ कि वह किसी की धोखा-धड़ी में नहीं आ सकते। करेंगे वही जो उनके मन में आयेगा। उनसे सुन्दर लड़की हो तो उनका दिल बिखर ही जायेगा।"

ज्योति की बातें सुन ज़ुलेख़ा और भी अधिक निराश होने लगी। उस दिन आँखें मिल गईं थीं। ज़ुलेख़ा के मन का मोर नाच उठा था। उस भोली तरुणी को क्या पता था कि यशवन्त को पाना आकाश कुसुम तोड़ लाना है। उसे यह भी ध्यान न रहा कि वह जुलाहे की बेटी है और ग़रीब है। मोहब्बत के रास्ते में धर्म और धन कितने बड़े रोड़े बन जाते हैं इसका प्रेम के पहिले आवेश में ध्यान न आना स्वाभाविक ही था। आवेश कम होने पर ज़िन्दगी की ये सच्चाइयाँ उसकी आँखों में घूर-घूर कर देखने लगीं। उसे एहसास होने लगा था कि यश और उसके बीच की दूरी इतनी ज़्यादा है कि उसका कम होना

मुश्किल ही नहीं असम्भव भी है। यश उस पार खड़ा मुस्करा रहा है, वह इस पार खड़ी सजल नेत्रों से उसकी ओर देख रही है। बीच का पाट चोड़ा है, बहुत चोड़ा, जिसको पार करना नामुमकिन है। फिर यह जानते हुये उसके पास तक पहुँचने की कोशिश करना क्या व्यर्थ नहीं होगा? क्या निश्चित असफलता की पूरी आशंका रहते हुये भी प्रयत्न करना नादानी न होगी? लेकिन वह करे क्या? (एक दिल में तो एक ही मूरत बस सकती है। एक मन्दिर में एक ही देवता रह सकता है।)

इसी उधेड़ बुन में पड़ी ज़ुलेख़ा के हाथ शिथिल होने लगे तो ज्योति ने फिर उसे अपनी ओर खींच कर कलेजे से लगा लिया। ज्योति भी आख़िर नारी ही थी। नारी हृदय की बातें समझना उसके लिये आसान था। ज़ुलेख़ा की ढोढ़ी को ऊपर उठा ज्योति ने कहा, "पगली, ऐसा उदास नहीं होना चाहिये। अगर दिल की बातें कह दे तो मैं भी तेरे लिये कुछ करूँ। मन के भीतर फोड़ा पकाने से फ़ायदा? घाव अधिक गहरा हो गया तो जानती है, नासूर की कोई दवा नहीं होती?"

ज़ुलेख़ा ने ज्योति की ओर देखना चाहा, पर देख न सकी। उसकी गोद में दुबक कर रह गई। ज्योति उसे दबाये रही स्नेह से।

अँधेरा गहरा हो चला था। और इन दोनों को जल्दी ही अलग होना था। जवान लड़कियों को अँधेरे में घर के बाहर रहना भी नहीं चाहिये। कैसा पड़े कैसा न पड़े। ज्योति ने चाहा फिर ज़ुलेख़ा से कुछ पूछे इसलिये उसने साफ़ कहा, "ज़ूली, तुझे मैं अपनी बहिन समझती हूँ। तू मुझे अपने मन की बात बता दे। मेरी शक्ति भर जो हो सकेगा, करने से बाज़ न आऊँगी। यशवन्त से मेरे विवाह की बातें चल रही हैं। ताऊ जी को वह बहुत पसन्द हैं। दादा को भी कोई एतराज़ नहीं है। लेकिन मैं अभी शादी वादी के चक्कर में पड़ना

नहीं चाहती। वह सुन्दर हैं, विद्वान हैं, वीर हैं। मेरे भीतर इनमें से एक भी विशेषता नहीं है। फिर, ब्याह शादी तो मन की बात है। तेरा दिल उन पर लट्टू हो गया है। अगर वह भी तुझे चाहते हैं, अगर तुझे ब्याहने की हिम्मत है तो मैं तेरी क़सम खा के कहती हूँ, मैं तेरे रास्ते में रोड़ा न बनूँगी। मैं पूरी कोशिश करूँगी कि तेरे दिल के अरमान पूरे हों। लेकिन तू मुझे कुछ बता भी तो। दिल का राज़ तो खोल।"

"क्या बताऊँ जोत", उदास हो ज़ुलेख़ा ने कहा, "मैं कुछ नहीं समझ पा रही हूँ। अब्बा को मेरी बहुत फ़िक्र है। किसी न किसी के साथ मेरा निकाह कराके वह सुख से मरना चाहते हैं। अपनी समझ में तो वह ठीक ही सोच और कर रहे हैं। लेकिन मेरा दिल मुझे जाने कहाँ कहाँ भरमाता फिर रहा है। वह जैसे क़ाबू में नहीं है। तेरी क़सम, मैं यह नहीं कह सकती जोत, कि यशवन्त ठाकुर से मैं ब्याह ही करना चाहती हूँ। सच तो यह है कि मेरा दिमाग़ सोचने से इन्कार करता है। दिल इधर उधर बहा ले जाता है। हाँ, यह मैं ज़रूर मानती हूँ कि उस दिन से यशवन्त ठाकुर मेरे मन में ज़रूर बस गये हैं। उनकी तेजवान मोहनी मूरत भुलाये नहीं भूलती, लेकिन जोत, मेरा दिल कहता है कि मेरा उनका ब्याह नहीं हो सकता। मुझमें उनमें ज़मीन आसमान का फ़र्क है। वह बहुत ऊँचे हैं। मैं उन्हें पा नहीं सकती। सोचती हूँ दिल पर ही क़ाबू रखने की कोशिश करनी चाहिये। उनको पाने के सपने देखना बेवकूफ़ी होगी।"

ज्योति चुप हो गई। ज़ुलेख़ा ने ठीक कहा था, "उनको पाने के सपने देखना बेवकूफ़ी होगी।" उसे स्वयं अपनी याद आई। यशवन्त के अन्दर किसी भी तरह की बुराई न रहते हुये भी उसका दिल उनके चरणों में लोट लोट जाने के लिये लालायित क्यों नहीं है? वह उनके सौंदर्य पर, उनकी मस्त आँखों पर, उभरे काँधो पर, सुपुष्ट सुघर शरीर पर वह आसक्त क्यों न हो सकी? यह समस्या थी ज्योति के सामने।

इसका हल वह न निकाल सकी। 'कहने से भी कोई प्यार करता है' उसने सोचा। प्यार मोहब्बत करने की चीज़ें नहीं है। इसके लिये पहिले से तैयारी नहीं की जाती। ये तो होने की चीज़ें हैं। हो जायँ तो फिर निभाने के लिये त्याग करने से पीछे न हटना निश्चय ही कर्तव्य है। उसने ज़ुलेख़ा का प्यार लिया। बोली, "तो तू क्या करेगी ज़ूली ?"

"क्या करूँगी बहिन, क़िस्मत जहाँ ले जायेगी, जाऊँगी। जो करायेगी करूँगी। मेरा क्या ? ग़रीब हूँ, औरत हूँ। कोई देखने सुनने वाला नहीं, कोई आगे पीछे नहीं। मरने से पहिले मेरे अब्बा मुझे किसी न किसी किनारे लगा ही देंगे। पैदा ही ऐसे घराने में हुई जहाँ सुख चैन नहीं जाना। अब आगे भी उसकी उम्मेद करना ग़लती होगी।"

"ऐसी नाउमेदी की बातें क्यों कर रही है, ज़ूली ? अभी तो अब्बा ने कहीं ठीक-ठाक भी नहीं किया है। यह तुझे कैसे मालूम कि तेरे ख़ाविन्द तेरे लायक़ नहीं मिलेंगे ?"

"मैं यह नहीं कह रही जोत ! मुमकिन है मेरी अंधेरी ज़िन्दगी में उजाले का सूरज निकले। लेकिन अभी तो उम्मेद की एक किरन भी दिखाई नहीं दे रही है। अब क्या होगा कौन जाने ? लेकिन अभी जो कुछ हो रहा है, मेरे दिल पर जो गुज़र रही है वह मुझे बेज़ार करने के लिये काफ़ी है। सच जानो जोत, मेरा दिल रो रहा है। सुना करती थी शादी ब्याह की बातें कान में पड़ते ही लड़कियों का मन बाँसों उछलने लगता है, लेकिन मेरा मन न जाने क्यों बैठता जाता है। मुझे अपने अगले दिनों पर जैसे भरोसा ही नहीं रहा है। लगता है जिस तरह अभी तक रो धोकर अपनी ज़िन्दगी की घड़ियाँ काटती आई हूँ उसी तरह आगे भी अपनी ज़िन्दगी का भार ढोती चली जाऊँगी। सोचो, यह सावन भादों का महीना जब कि फूल पत्ते भी हरे हो जाते हैं, ऊसर ज़मीन भी हरियाली की चादर से ढँक जाती है, सूखी

डालियाँ भी गदराये फलों से लद जाती हैं, मेरे लिये कौन से सुख, खुशी उमेद का सँदेसा लेकर आई है। पुरवाई दिल में टीस पैदा करती है, बदन टूटने लगता है। अँगड़ाई लेकर उँगलियाँ चटख़ा कर रह जाती हूँ। लगता है कोई मेरा इन्तज़ार कर रहा है, कोई मुझे बुला रहा है, कोई मेरी ओर मुहब्बत भरी निगाहों से देख रहा है, लेकिन वह कौन है, कहाँ है, मैं नहीं जानती। लाख कोशिश करती हूँ कि उसकी एक झाँकी भर देख पाऊँ, लेकिन जितना ही आँखें गड़ाकर उसे देखने की कोशिश करती हूँ उतना ही जैसे वह पर्दे के पीछे छिपता जाता है, ऐसा पर्दा जिसके पार देख सकना मेरे लिये नामुमकिन है। इसीलिये उदास रहती हूँ। शायद तू मेरे दिल की बात समझ सकी होगी। मेरी जोत, तू मेरी मदद कर। अकेले सोचते बिसूरते मैं पागल हुई जा रही हूँ। तू उस दिन की याद दिला रही है। तेरा याद दिलाना ठीक भी है। उस दिन यश ठाकुर को देख ऐसा लगा कि जिस देवता की पूजा अनजाने में कर रही थी वह वही थे। लेकिन वह एक दिन की बात थी। सामना हुआ, आँखें चार हुईं। बदन के सारे तार झनझना उठे। आँखों के आगे अँधेरा सा छाने लगा जैसे बेहोश हुई जा रही हूँ। होश सँभालते सँभालते वह चले गये थे। मेरा दिल तड़प कर रह गया। उस वक़्त तू न होती तो मेरा क्या हाल होता ?"

ज्योति ने देखा ज़ुलेख़ा की तबीयत ख़राब होती जा रही है। निश्चय किया कि बातों को यहीं समाप्त कर देना चाहिये, विषय बदल देना चाहिये। बोली, "अच्छा ज़ुली अब कल बातें होंगी। याद है कल सलीनो है। बाग़ में झूले पड़ेंगे। ग़ायब मत हो जाना। शायद यश भी आये ज़मीदार के साथ। मौक़ा अच्छा रहेगा। अच्छा, अब मैं जाती हूँ, तू भी घर जा।" कहती ज्योति तेज़ी से चल दी। उसने जान बूझ कर उत्तर का इन्तज़ार नहीं किया। ज़ुलेख़ा भी धीरे-धीरे अपने घर की ओर चली।

घर पहुँचकर उसने देखा, बाबा रोटी प्याज़ के टुकड़े और नमक के साथ खा रहे हैं, अपनी टूटी चारपाई पर बैठे बैठे। ज़ुलेख़ा को देखा तो बोले, ज़रा पानी धर दे बेटा, कहाँ रह गई थी? जल्दी लौट आया कर, दिन ख़राब हैं आज कल के। ज़रा ला दे पानी।"

"लाई बाबा, अभी लाई" कहकर ज़ुलेख़ा मिट्टी के बँधने में घड़े से पानी उँडेल कर भर लाई। बाबा के पास रखकर वह एक ओर चुपचाप बैठ गई।

"आज मैं ज़िमीदार की ओर गया था बेटा। सोचा था कारिन्दों से मिलने मिलाने से कुछ काम बन जायेगा। शायद सरकार तक मेरी पुकार पहुँच जाय लेकिन" पानी पी बात जारी रखते हुये दुखी दीन-मोहम्मद ने कहा, "वहाँ तो एक से एक बढ़ कर बदज़ात बसते हैं। इन्सानियत तो जैसे छू भी नहीं गई हैं। फ़ोश मज़ाक़, बोली ठिबोली, गन्दी बातें इनके अलावा कुछ और देखने सुनने को न मिला। सरकार ने भी कैसे कैसे गन्दे इन्सान पाल रखे हैं। वहाँ फिर जाने की तबीयत नहीं होती। शराफ़त, दयानतदारी, नेक नीयती के दिन ढल गये बेटा। इन्हीं सरकार के वालिद थे। रईस थे। कितने नेक थे। अपनी रियाया की सुनते थे, दिल में गुनते थे। इन्साफ़ करते थे ठाठ बाट के आदमी थे। तवायफ़ें थीं। दरबारी थे। क्या नहीं था? लेकिन ग़रीब की सुनते थे। मेरे ऊपर उनकी ख़ास इनायत थी।" एक सर्द आह भर बूढ़े ने बात आगे बढ़ाई, "लड़कपन में मैं उनके साथ खेला था, गुल्ली डण्डा, चिरैया पिन्डौल, और जाने क्या-क्या? घर में आना जाना था। इज़्ज़त वक़्त थी। लड़कपन की दोस्ती निभाना जानते थे। ख़ुदा की रहमत थी उनके ऊपर। जब तक ज़िन्दा रहे शान से, वक़ार के साथ और मरे तो चार आदमी रोने वाले पीछे छोड़ गये। और एक ये हैं नये साहबज़ादे। बाप दादों की कमाई उड़ाना, इज़्ज़त आबरू को पानी की तरह बहाना इन का शेवा है जैसा राजा वैसी परजा। बेटा, अब पहिले जैसे न आदमी रहे, न पहिले जैसी बातें। शाही

और नवाबी ज़माने और कम्पनी के माने में ज़मीन ज़आसमान का फ़र्क़ है। इन्सान गिर गया है। उसकी इन्सानियत ज़मीन की धूल चाट रही है। ज़माना ऐसा हो गया है कि ख़ुदा जितनी जल्द यहाँ से उठा ले चले उतना ही अच्छा। एक फ़र्ज़ बाक़ी रह गया है। तुझे भी किसी घाट लगा देता तो चैन से क़ब्र में सो रहता। पैर तो लटका ही चुका हूँ, अब दिन ही कितने बाक़ी रह गये हैं!" अवसाद और निराशा का बुत बूढ़ा दीन मोहम्मद सर्द आहें भर ज़ुलेख़ा की ओर देखता रहा।

ज़ुलेख़ा उठी, चिलम भरा और हुक्के पर रख, निगाली अब्बा की ओर करती हुई बोली, "आप ऐसी बातें क्यों करते हैं अब्बा? आपके हाथे से ही पलकर मैं इतनी बड़ी हुई। सिर पर आपका साया न रहा तो मैं किस तरह ज़िन्दा रहूँगी। आप ऐसी बातें न करें।" ज़ुलेख़ा सुबकने लगी। शाम ही से उसका दिल भरा आ रहा था। बार बार कोशिश कर उसके अपने उमड़ते आँसुओं को रोका था। इस समय बाबा की बातों ने उसके कलेजे को हिला दिया। वह अपने को रोक न सकी, उसके आँसू उफर पड़े।

दीनमोहम्मद ने ज़ुलेख़ा का सिर अपनी जाघों पर रख लिया। स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरते हुये भीगी आवाज़ में बोला, "दुख न कर ज़ूली। मैं तुझे यों छोड़कर न जाऊँगा। मेरी आँखों की तारा, तू ही मेरी ज़इफी की लकड़ी है। तुझे मझधार में छोड़ कर कैसे जाऊँगा। ख़ुदा वह दिन ज़रूर लायेगा जब मैं तेरा हाथ किसी शरीफ़ नौजवान के हाथ में देकर इत्मीनान से आँखें बन्द कर सकूंगा। ज़ूली, मैंने अपनी जान में कोई गुनाह नहीं किया। फिर भी जाने क्यों ज़िन्दगी भर सज़ा ही पाता रहा। जब तक तेरी वाल्दा ज़िन्दा थीं, मेरे दिन सोने के थे। उनके इन्तक़ाल के बाद चैन से एक दिन भी न गुज़रा। कारोबार चौपट हो गया। दाने दाने को मोहताज हो गया। दो जून चूनी भूंसी का भी जुटाना मुश्किल हो गया। मेरी क़िस्मत ने दग़ा किया। अगर मेरी आँख

सेकने के लिये, मेरे घावों पर मरहम करने के लिये तू न होती तो मेरा जनाज़ा कभी का उठ गया होता ज़ूली ! तूने मुझे ज़िन्दा रखा। तुझे देख देख कर मैं अपनी दुख की घड़ियाँ काटता रहा। रो मत बेटी, तेरे रोने से मेरा कलेजा फटा जाता है। मैं तेरे लिये कुछ भी न कर सका। मैं कितना नालायक़ हूँ। लेकिन ज़ूली, फिर भी मैं तेरा वालिद हूँ, तेरा बाप ! तू हँसती है तो मेरे मन का फूल भी खिल उठता है। उम्मेद और ख़ुशी की एक लहर दौड़ जाती है। तेरे इन बड़ी बड़ी आँखों में लाल डोरियाँ और आँसू के क़तरे देख मेरा दिल बैठने लगता है। मेरी सारी कमज़ोरियाँ और नाकामियाँ मेरी आँखों में घूरने लगती हैं। तू हँस दे बेटी, हँस दे मेरी ज़ूली," कहते कहते उन्मद, उदभ्रान्त बूढ़ा बार बार ज़ुलेख़ा का माथा और बाल चूमने लगा।

ज़ुलेख़ा का रोना रुकने के बजाय बढ़ने लगा। वह अपने अब्बा की गोद में छिप कर खुल कर रोना चाहती थी। यही वह स्थान है जहाँ सन्तान अपने को संरक्षित और आश्वस्त अनुभव करती है। माँ का आँचल, पिता की गोद वह स्थान हैं जहाँ संसार के कष्टों, दुखों और व्याधियों की पहुँच नहीं है। ज़ुलेख़ा को माँ के आँचल की याद नहीं रही। पन्द्रह बरस पहिले वह ज़ुलेख़ा को डेढ़ बरस की छोड़ कर चल बसी थी। अब्बा ने उसे पाला पोसा। अब्बा को ही ज़ुलेख़ा बाप, मां, भाई, बहिन, सब कुछ समझती थी। उनकी ही गोद में खेल कूद कर वह इतनी बड़ी हुई थी। वही उसके सब कुछ थे। उनकी गोद में अपने को पा इस समय वह अपनी सारी व्यथाओं को बहा देना चाहती खुलकर, जी भर कर !

अपने रोने में ज़ुलेख़ा को यह ध्यान न रहा कि बूढ़े अब्बा की आँखों से कितनी आँसुओं की धारें बह चुकी हैं बूढ़ा दीनमोहम्मद ज़ब्त करने का आदी था। अपने कलेजे पर पत्थर रखकर, दिल की बातों को छिपा ले जाने की आदत पड़ गई थी। बेटी के सामने रोना ग़लत बात है। इससे उसका मुलायम दिल दुखेगा, उसकी परेशानी

बढ़ेगी। दीनमोहम्मद यह जानता था। इसीलिये वह अपने आँसुओं को रोके रहता था। लेकिन आज उसका दिल बहुत कमज़ोर हो गया था। आज वह हज़ार कोशिश करने पर भी अपने को रोक न सका। अब्बा के रोने का ध्यान ज़ुलेख़ा को तब आया जब उनके सुबकने की आवाज़ उसने सुनी। झटपट आंसू पोंछ वह खड़ी हो गई। अब्बा को समझाने की ताब उसमें न थी। उठकर बाहर गई, अपने को संभाला और मुस्कराने की कोशिश करती हुई बोली, "अब्बा, देखिये मैं हँस रही हूँ। आप भी हँसिये। आपने कहा था न मैं हँसती हूँ तो आपके मन क फूल खिल जाता है। अपने आँसू बन्द कीजिये अब्बा!"

बूढ़े ने ज़ुलेख़ा की ओर देखा, उसका झुरियों वाला चेहरा फिर भरभरा आया लेकिन अबकी उसने अपने को रोक लिया। कुर्ते के दामन से अपने आँसू पोंछे और दिये की ओर देख कर बोला, "बेटी, जा, खाना खाले, दिये में तेल कम है, बत्ती भी काफ़ी जल गई है, अँधेरा जल्दी होने वाला। वक़्त रहते काम कर लेना अच्छा होता है।"

ज़ुलेख़ा ने दिये की ओर देखा। उसकी पीली रोशनी में ज़ुलेख़ा का रूप निखर आया था। रोने के बाद सौंदर्य और लुनाई चौगुनी बढ़ जाती है। शान्त प्रस्तर-मूर्ति की भांति मंत्र मुग्ध सी ज़ुलेख़ा न जाने क्यों बहुत देर तक दिये की उस कांपती लौ की ओर देखती रही। और बूढ़ा दीन मोहम्मद अपनी बेटी के निखरे यौवन को लालायित सजल नेत्रों से ऐसे देखता रहा जैसे कोई कलाकार अपनी मूर्ति की ओर सगर्व सतृष्ण नेत्रों से देखता हो। बूढ़ा दीनमोहम्मद शायद अपनी उजड़ी ज़िन्दगी, लुटे अरमानों और टूटे दिल के बावजूद भी अतीव सुन्दरी अपनी नौवयौवना बेटी को देख उस नैसर्गिक सुख का अनुभव कर रहा था जो नाकाम, असफल, निराश पिता की ज़िन्दगी की अन्तिम सांसों का आख़िरी सहारा है। सब कुछ भूली हुई ज़ुलेख़ा बहुत देर तक एक टक दिये की ओर देखता रही! बूढ़े की आंखें भी अपनी जूली के मनो-

हर मुखड़े पर टंगीं रहीं। और यह प्रक्रिया चलती रही, बहुत देर तक बहुत देर तक !

घर लौटने पर ज्योति की उदासी बढ़ गई। यों तो उसने .ज़ुलेख़ा का दिल रखने और उसकी परेशानी दूर करने के लिये कुछ न कुछ कह दिया था। लेकिन इससे उसे सन्तोष न था। वह हृदय से चाहती कि वह .ज़ुलेख़ा की कुछ सहायता कर सके। लेकिन करे क्या यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। घर में रात दिन उसके ब्याह का चर्चा हो रहा था। सभी चाहते थे कि उसकी शादी यशवन्त से हो जाय। लेकिन उसका हृदय कहता, 'शादी मेरी होने वाली है, मेरे घर वालों की नहीं। वह मुझ से पूछना आवश्यक क्यों नहीं समझते ?' एक तरफ़ अपनी चार पाई पर पड़ी वह यही सोचती रही, 'क्या करना चाहिये, क्या किया जा सकता है ?' .ज़ुलेख़ा के प्रति उसका कुछ कर्तव्य था। दुनियाँ की आँखों में .ज़ुलेख़ा जुलाहे की बेटी थी, ग़रीब थी लेकिन ज्योति की वह सहेली थी, लड़कपन साथ बीता, एक साथ खाना, एक साथ खेलना कूदना। उम्र के साथ साथ घनिष्टता भी बढ़ती गई। और जब दोनों की बाल चपलता का स्थान यौवन शैथिल्य और भार ने लेलिया, जब मद और अलसता के कारण मंथरता आ गई गति में और हाव भाव में, आँखों में और शरीर के दूसरे भागों में, तब उनकी घनिष्टता भी अधिक गंभीर, अचंचल और सलज हो गई।

.ज़ुलेख़ा ज्योति को बचपन से ही तू कह आई थी और सुन भी आई थी। आपस में भेद था ही नहीं। मोहब्बत और साहचर्य की प्रज्ज्वलित अग्नि में श्रेणी-धर्म गत भेद भस्म हो चुके थे। दीनमोहम्मद को यह मालूम था और ज्योति के घर वालों को भी। इतना गहरा नाता होने के कारण और नारी हृदय की कमज़ोरियों का व्यक्तिगत एहसास भी होने की वजह से ज्योति .ज़ुलेख़ा के मन की दशा समझ सकती थी। दोनों की दुनिया एक थी। दोनों की व्यथायें एक थीं। दोनों

के सोचने समझने का ढंग भी एक था—इसलिये कि उनके हृदय एक दूसरे को जानते पहचानते थे।)

ज्योति ने ठंढी साँस ली। उसकी आँखों के सामने सजलनयना सलोनी षोडशी ज़ुलेख़ा की विवृत, अस्तव्यस्त, उजड़ी हुई तसवीर थी। अभी ज़ुलेख़ा ने जाना भी नहीं मोहब्बत किसे कहते हैं। प्रेम के अतल सागर की आलोड़ित लहरों और थपेड़ों की जीवनमयी अनुभूति के पहिले ही, तट पर ही खड़ी, उसे निराशा और अवसाद की जिन तत्वहीन, असार सच्चाइयों का सामना करना पड़ रहा है वे उसे बेधे दे रही हैं। लहरों का निमंत्रण स्वीकार करने के लिये यह आवश्यक है कि तट पर से निर्णय, निश्चय और दृढ़ता की प्रतिज्ञा ली जा चुकी रहे। ऐसा अवसर आये इसके पहिले ही उदासी और अन्यमनस्कता अस्वाभाविक है। यह तो भविष्य की भ्रमपूर्ण आशंकाओं का कारण बन सकती है। 'तो यह बात स्वस्थ नहीं है' ज्योति ने सोचा। 'लेकिन किया क्या जाय?' यही वह निश्चय नहीं कर पा रही थी।

अपनी उधेड़बुन में पड़ी ज्योति जिस समय तरह तरह की बातें सोच रही थी उसी समय भीतर उसके ब्याह का चर्चा ज़ोरों पर था। स्वयं यशवन्त ने उत्सुकता दिखाई थी। ज्योति के सौन्दर्य पर वह रीझ चुका था। दोनों समकक्ष थे और कुलीन। यशवन्त ने चाहा था कि ज्योति उसे मिल जाय। लेकिन यशवन्त यह सोचना भूल गया था कि ज्योति अपनी इच्छा को भी महत्व देती है। वह किसी के भी हाथ अपने को दे देने को तैयार नहीं हो सकती। यशवन्त को शायद इसका भी अन्दाज़ न था कि ऊपर से भोली भाली लगने वाली यह लड़की दृढ़ प्रतिज्ञ है और अपने निर्णयों पर विश्वास के साथ डटने की क्षमता भी रखती है। 'ताली दोनों हाथ से बजती है। प्रेम एकांगी नहीं हो सकता। विवाह प्रेम की उस अवस्था का नतीजा है जब प्रेमी और प्रेमिका का विवाह सम्बन्ध में बँध कर एक साथ ही जीवन व्यतीत करने के अलावा और कोई चारा न रह जाय। विवाह प्रेम की प्रक्रिया

की एक मंज़िल है। प्रेम के आरम्भ से ही उपजी हुई किसी गंभीर समस्या का एक स्वाभाविक हल है। विवाह दो प्राणियों को ज़बरदस्ती एक दूसरे के गले में मढ़ देने को नहीं कहते।' ज्योति सोचती गई, 'विवाह मेरा हो रहा है। उसका ख़मियाज़ा ज़िन्दगी भर भुगतना मुझे पड़ेगा। लेकिन कितनी विचित्र बात है कि ये लोग मेरी सम्मति की आवश्यकता ही नहीं समझते। स्वयंवर के आदर्शों को ठुकरा असहाय बालिकाओं की ज़िन्दगी के साथ खेल करने वाले ये स्नेही स्वजन इसे समझते क्यों नहीं!" ज्योति तिलमिला उठी जब उसने सुना ताऊ जी आवेश में कह रहे थे, "यशवन्त की शादी ज्योति से होगी, इसलिये कि मैं स्वयं यशवन्त के घर वालों से कह आया हूँ। अपने वचन को छोड़ना मुझे शोभा नहीं देता। मैं अपने शब्द वापस नहीं ले सकता। यशवन्त से निश्चय रूप से कहला दो कि ज्योति उसकी हो चुकी।"

'ओह! कितनी निर्ममता, कितनी क्रूरता है यह!' ज्योति ने सोचा वह उठ कर अभी ताऊ जी के पास जाय और उनसे साफ़ कह दे कि 'आप जो कुछ करने जा रहे हैं वह अन्याय है। मैं इस अन्याय के सामने माथा टेकने के लिये तैयार नहीं हूँ।' लेकिन कुल-परम्परा के विरुद्ध इस निर्लज्ज व्यवहार के लिये जितनी हिम्मत की आवश्यकता थी, उसके न होने के कारण ज्योति अपनी चारपाई पर ही करवटें बदलती रह गई। बाहर उसके भाग्य का निपटारा हो रहा था, भीतर वह अपने भाग्य को रो रही थी!

ज्योति तड़प रही थी, पानी से निकाली हुई मछली की भाँति। ज़ुलेख़ा निश्चय ही यशवन्त से ब्याह करना चाहती है। लेकिन उसका किसी को ध्यान ही नहीं। ज़ुलेख़ा के लिये प्रयत्न करने वाला, उसकी सहायता करने वाला कोई नहीं है। उसकी ओर किसी की निगाह जा ही नहीं सकती? ज़ुलेख़ा यशवन्त की समकक्ष नहीं, एक जाति की नहीं। मेरी शादी यशवन्त से निश्चय ही होनी चाहिये क्योंकि ये दोनों विशेषतायें गुरुजनों की कृपा से मेरे पास हैं। 'ज्योति का हृदय वितृष्णा

से भर गया। 'इस सामाजिक प्रथा के सामने सिर झुकाना कायरता है, उसने सोचा निश्चय सा करते हुये।

बाहर की बातें उसे फिर सुनाई पड़ने लगीं। ताऊजी की कर्कश आवाज़ थी। कह रहे थे, 'तो यह निश्चय रहा कल वह बाग़ में आयेंगे, झूले झूलने पास पड़ोस की लड़कियाँ भी जायेंगी। ज्योति भी अवश्य ही जायेगी। यशवन्त से कल अन्तिम रूप से कह देना चाहिये। शुभ दिन, शुभ घड़ी में ही इस पवित्र कार्य का आरम्भ होना चाहिये।'

ज्योति ने सोचा अब कुल परम्परा और लाज का भार ढोने के माने हैं उस बोझ के नीचे अपने को कुचलवा देना। वह एक क्षण रुकी, बुदबुदाई। उसका माथा सिकुड़ा। पलकें स्थिर हुईं। वह तपाक से उठ कर खड़ी हुई। साड़ी ठीक की। और, नपे तुले क़दमों से बढ़ती हुई ताऊ जी के पास पहुंच गई। सभी स्तब्ध अवाक् रह गये जब ज्योति ने तीखे साफ़ शब्दों में कहा, 'ताऊजी' आप लोग व्यर्थ का निश्चय कर रहे हैं। मैं यशवन्त ठाकुर से ब्याह नहीं कर सकती।' ज्योति वापस चली गई। उत्तर सुनने की न उसमें ताब थी, फ़ुर्सत।

शान्त, स्थिर, नीरव वातावरण में यह तीव्र भीषण उल्कापात किसी अमंगल का ही सूचक था। सभी एक दूसरे का मुँह ताकते रह गये। कोई कुछ बोल न सका। सबके ओंठ जैसे सिल गये थे।

ताऊ जी ने अन्त में उस असह्य, असामयिक नीरवता को भँग करते हुये चुनोती के स्वर में कहा,—"ज्योति, पगली!"

तीर की भाँति लगने वाले ये शब्द ज्योति के कलेजे में जा चुभे। वह तड़प गई। कौंध गई।

धीरे धीरे बातचीत करने वाले गुरुजन सोने चले गये। और, ज्यति अनिश्चय और अन्धकार के मोटे आवरण के पार किसी ज्योतित रेखा की ओर आँखें गड़ाये जाने कब तक पड़ी रही।

—: ० :—

# २

सतरंगे बादलों की ओट में बालेन्दु लुका-छिपी कर ही रहा था कि फूलों, कलियों, तरु शिखाओं और लता वल्लरियों को स्वर्ण-मण्डित करने वाली रजत रश्मियाँ नाच उठीं। नव-जीवन, नव-यौवन का मधुर प्राणदायक संदेसा बिखरेती, प्रभात फेरी देती, प्रातः समीरण मन्द, मन्द चलने लगी। ज्योति ने देखा, सबेरा हो गया है। चटपट उठी और तैयार हो ज़ुलेख़ा के घर की ओर चल दी।

अस्तव्यस्त ज़ुलेख़ा उदास अपने बिस्तर पर औंधी पड़ी थी। रात शायद तारे गिनने में ही कटी थी उसकी। तकिया के भीजे गिलाफ़ ने इस बात को भी साबित कर दिया कि वह फफक रोई थी।

ज़ुलेख़ा ने करवट बदल कर देखा ज्योति मुस्कराती सामने खड़ी थी। वह हड़बड़ा कर उठ पड़ी। "कहो जोत, इतने सबेरे ?" घबराहट में उसके मुँह से निकल गया।

"पगली, इतना दिन चढ़ आया और तुझे सबेरा ही लग रहा है ? बाग़ में चलना है या नहीं !" ज्योति ने दुलार से पूछा।

"उँ, अच्छा" आँखें मीज, अंगड़ाई लेती ज़ुलेख़ा ने कहा। रसीली आँखों की रक्तिम डोरियाँ बता रही थीं कि ज़ुलेख़ा की नींद पूरी नहीं हुई थी। उसकी पीठ थपथपाते हुये ज्योति ने पूछ ही लिया, "क्यों ? नींद नहीं आई ठीक से रात भर ?"

"आई तो थी। ऐसा सवाल क्यों पूछ रही हो ?"

"आँखें तो कोई और ही कहानी कह रही हैं—पगली हो तुम, पगली। बताओ कब सोईं तुम रात को ?" आँखें निकाल ज्योति ने पूछा।

"देर तो सचमुच हो गई थी। नींद नहीं आई। मन उचट गया था। सोने से ही डर लगता था। सोचती थी अगर फिर न उठ सकूँ तो? सच जोत, तेरे सिर की क़सम, मुझे जाने क्या क्या ख़्याल आ रहे थे। अपने से ही डर लग रहा था, जैसे अपनी ही परछाईं मुझे हड़प जाने के लिए तैयार हो। कई बार सोचा बाबा को उठा लूँ, लेकिन फिर रुक गई। आज की मेरी रात बहुत बुरी कटी। जब पानी बरसा और ठंढी हवा चली तो थोड़ी देर के लिये ज़रूर मुझे नींद आ गई थी। वरना, रात भर यों ही करवटें बदलती रही हूँ। ऐसा इसके पहिले मुझे कभी नहीं हुआ था जोत!")

ज्योति समझ गई, शाम की उदासी, एकान्त नीरवता और भयानक बरसाती रात में, ज़ुलेख़ा के कलेजे पर गहरी जम गई थी। अक्सर ऐसा हो जाता है। लेकिन इस प्रकार अपनी मनोदशा बनाना, स्वयं अपने को त्रस्त करना क्या ज़ुलेख़ा के लिये उचित है? क्या इसका असर उसके स्वास्थ्य पर न पड़ेगा? ज्योति ज़ुलेख़ा की ओर घूम कर ऐसे देखती रही जैसे वह उसके दिल और दिमाग़ की भीतरी बातों को एक साथ पढ़ लेना चाहती हो।

"अच्छा चलो, तैयार हो जाओ। देर हो रही है।" थोड़ी देर थम कर फिर बात बदलने के लिये ज्योति ने कहा।

ज़ुलेख़ा और ज्योति जब बाग़ में पहुँचीं तो वहाँ पेड़ों पर झूले पड़ रहे थे। लम्बे चौड़े बाग़ के इस छोर से उस छोर तक झूले लटक रहे थे। नवेली कुमारियाँ, नवोढ़ा बधुयें, रंग बिरंगी साड़ियों में सजी बजी, आँखों में आँजन भरे, चोली कसे, चूड़ियों से कलाइयों को चमकातीं, छमा छम पायल बजातीं, थिरकतीं, नाचतीं फिर रही थीं, बाग़ में इधर से उधर और उधर से इधर! चारो ओर यौवन का बहार था। एक रसीला वातावरण अँबियों से पके आम तक जिसका दायरा था—शीतल वायु के झोंके, साड़ियों, चूनरों और लहंगों को फर्र फर्र उड़ाते, कटाक्षों,

बोलियों-ठिठोलियों, नख़रों-ठुसकियों से रस का सागर जैसे लहरा उठता था। चारों ओर मन्थर, रस भरी, गदराई भारी पग वाली टोलियों की लहराती बहार थी।

बच्चों का किलकारी मारता दल दूकानों के आस पास घूम-घूम लकड़ी और काग़ज़ के बाजे, भोंपू, सीटियाँ बजा रहा था। छरहरे नौ जवान महीन कुर्तें की बाहें चढ़ाये, पान खा, मूछें टेते, यहाँ वहाँ नज़रें मारते, मुस्कराते चलते थे। अल्हड़ जवानी को जैसे साकार रूप मिल गया हो।

बाग़ के पूरब ज़िमींदार का बँगला था। कजली शुरू होने में इतनी देर थी कि वह आ जायें। सबकी आँखें रह रह कर उधर ही जातीं, बँगले की ओर। उतावली हो सारी जनता सरकार के शुभागमन की राह देख रही थी।

सुफ़ेद घोड़े पर यशवन्तसिंह ठाकुर बाईं ओर और चितकबरे घोड़े पर सरकार राजसी गहनों से लदे, कण्ठा, माला और जाने क्या क्या, लम्बा अँगरखा और चूड़ीदार पैजामे के नीचे कामदार जोड़ी, सिर पर कलँगीदार रेशमी दोपल्ली, आँखों में काजल लगाये, कमर में कटार और दोनों हाथ में घोड़े की रास! खूब फब रहे थे। आँखों से रुतबे और शान का मद टपकता था। उभरा हुआ सीना और चौड़ा काँधा, ख़ान्दानी पौरुष और वीरता का प्रमाण दे रहे थे। यशवन्तसिंह ठाकुर और सरकार की इस जोड़ी पर किसका दिल न आ जायेगा। दोनों स्वस्थ थे, सुन्दर और आकर्षक! तरुण युवतियों के कटाक्ष, आवेश, उत्कण्ठा, मुस्कान का रस लेते सरकार यशवन्त के कन्धे पर हाथ रखे इधर उधर नज़र दौड़ाते बाग़ में टहलने लगे। बाजे-वालों को इशारा हुआ 'कजली बजाओ।' मधु-रस से छका मानव समाज मस्त हो झूमने लगा। जिस जिस झूले पर सरकार की निगाह पड़ती पेंगे चलने लगतीं। और थोड़ी देर में सारा बाग़ छैल छबीली

कोकिल कन्ठियों की पंचम स्वर में गूँजती बहारदार कजलियों से आप्लावित होने लगा। पेंगें जितनी तेज़ मारी जातीं पेड़ों की डालियाँ उतनी ही तेज़ी के साथ झूमने लगतीं। मानों आनन्द विभोर हो वह भी वातावरण में मस्त होती जा रही हैं। सरकार एक पेड़ के नीचे खड़े हुये तो देखा सामने झूले पर दो तरुणियाँ आसमान को छूती हुई पेंगें मार रही हैं। और, तेज़ मीठे स्वर में गा रही हैं :—

नटवर नन्दलाल गिरधारी, दे दो चीर हमारी ना,
चीर ले बैठो कदम की डारी, हम जल माह उघारी ना।
राधा करती विनय तुम्हारी, दे दो चीर हमारी ना,
तुमरी चीरै जबै हम देवै होओ जल से न्यारी ना।
पात पहिरि राधा जब निकली, कृष्ण दियो तब गारी ना,
सूरदास प्रभु आस चरण की, चरण कमल बलिहारी ना॥

चेहरे पर मुस्कान की रेखा दौड़ गई सरकार के। यशवन्त का कन्धा थपथपाते हुये बोले, "अच्छा गा लेती हैं।" यशवन्त भी मुस्करा पड़ा और दोनों आगे बढ़े। कुछ दूर आगे बढ़ एक झूले की ओर इशारा किया। यशवन्त ने कहा, "हाँ, वही है गोरी वाली।"

"अच्छी तो है," सरकार ने मुस्कराते हुये कहा।

'हाँ, अच्छी है।"

"दूसरी बातें तय हो गई हैं?"

'हाँ सब ठीक है। आज शाम तक सब कुछ तय हो जायेगा। शाम को लड़की के बूढ़े ताऊ आवेंगे। उम्मेद तो है कि कोई मुश्किल नहीं पड़ेगी।"

'लड़की तो पटाखा है दोस्त!" बाईं आँख दबा, मुस्कराते हुये युसुफ़ बोला। उसकी शरारत भरी मुस्कराहट से निष्प्रभ हो यशवन्त

चुप रह गया। उसे युसुफ़ का कथन कुछ जँचा नहीं। टालने के लिये बोला, 'घराना तो तुम जानते ही हो अच्छा है, हमसे पुराने रईस हैं ये लोग। सुना है लड़की गुणवती है। घोड़ सवारी, तीर चलाना, भाला मारना, सभी में होशियार है।"

"हाँ! तीर भाले भी चलाती है, शिकार भी अच्छा करती है। तब तो ख़तरनाक है लौंडिया। शिकारियों को क्या? एक शिकार से थोड़े ही तबीयत भरती है। एक शिकार दूसरे शिकार के लिये हिम्मत बढ़ाता है, उभारता है। ख़ैर, तुम भी कच्ची गोटी खेले हुये थोड़े ही हो। औरतों को तो मर्द चाहिये। ऐसा मर्द जो उनसे तगड़ा हो, जिससे उनकी तबीयत भर जाय। तुम तो खेले हुये नौ जवान हो।"

यशवन्त को दूसरा तमाचा लगा। युसुफ़ ने निश्चय ही किसी बदनीयती से ऐसा नहीं कहा था। रसमय वातावरण था, ज्योति भी यशवन्त की भावी पत्नी थी। इसलिये उसके प्रति ऐसी बातें कहना न उच्छृंखलता थी, न असभ्यता। लेकिन यशवन्त का दिल इसे क़बूल करने को तैयार न था। चाहे स्वयं वह कितनी ही तरुणियों के ऊपर ऐसे कटाक्ष कर चुका हो, लेकिन अपनी भावी पत्नी के बारे में ऐसी बातें सुनने को वह तैयार न था। युसुफ़ का विरोध करना उसके बस के बाहर की बात थी। चुप रह जाना ही एक मात्र रास्ता था।

यशवन्त आगे बढ़ने को हुआ तो युसुफ़ ने टोका, "यार रुको अभी, ज़रा इनके चोचले भी तो देखलें। वह देखो, लहरों जैसी लहराती पेंगें मार रही हैं। ज़रा बैठो न उनके साथ झूले पर।"

इसरार के यह शब्द यशवन्त को बहुत बुरे लगे। वह ठिठका। कुछ सोच ही रहा था कि युसुफ़ ने यशवन्त का हाथ पकड़ लिया और बलपूर्वक उसे ज्योति के झूले की ओर ले चला। यशवन्त की मनोदशा का क्या कहना? बुरी हालत थी बेचारे की। जी चाहता था कि वह ज्योति के पास एक झूले हीपर बैठ, धरातल से कुछ ऊपर उठ

जाय, झूले के उतार-चढ़ाव के साथ उसके प्राण वायु में उतार-चढ़ाव आये। हृदय धकधकाये और शरीर के तार-तार झंकृत हो जायँ। चाहता था उसके समीप जाना, उसके सम्पर्क में आना, जो उसके भविष्य की निर्णायिका और निर्मात्री होगी, जो उसके शुष्क जीवन में हरियाली लायेगी, प्राण भरेगी। जो उसकी अपनी होगी। केवल अपनी! लेकिन युसुफ़ के ओछे शब्दों ने उसकी कोमल भावनाओं को ठेस पहुंचायी थी। उसे चोट लगी थी। पैर तो बढ़ते जाते थे लेकिन मन शिथिल हो गया था।

ठिठकते-ठिठकते यशवन्त झूले की ओर बढ़ा। सामने देख सकना उसके लिये दूभर हो रहा था। झूले की गति में भी कमी आ रही थी। ज्योति समझ गई, यशवन्त उसके झूले पर बैठेगा। एक क्षण तक वह किंकर्तव्यविमूढ़ सी हल्के हल्के पेंग चलाती रही। फिर उसके पाँव ढीले पड़ गये। ज़ुलेख़ा की ओर उसने स्नेह से देखा। निचले ओंठ को दांतों से दबाया, गहरी साँस ली और झूला रोक दिया। ज़ुलेख़ा की आँखें तो बन्द हुई जा रही थीं। जिसे चाहो उसके यकायक सामने आ जाने पर आँखें बन्द हो ही जाती हैं। उसका सिर आप से आप झुक गया। आँसू भरी आँखों से एक बार उसने ज्योति की ओर देखा और मुँह घुमा लिया।

"आ सकता हूँ आपके झूले पर?" काँपती, भर्राई आवाज़ में यशवन्त ने पूछा। मुस्कराने और सामान्य रह पाने का प्रयास उसके अंग-प्रत्यंग से प्रतिलक्षित था। यशवन्त ठिठक गया।

समय खोने का न था। ज्योति को अपना काम कर जाना था। फ़ौरन बोल उठी, "अवश्य आइये, स्वागतम्। मेरी बहिन ज़ुलेख़ा आप के साथ झूले पर पेंगे मारने के लिये लालायित थीं। आइये, बड़ी कृपा की जो आपने हमारे साथ दो क्षण बिताने का निश्चय किया।"

ज्योति की सहज भद्रता और शिष्टव्यवहार ने यशवन्त का मन और भी पिघला दिया। उसने आकर नमस्कार किया ज्योति और ज़ुलेख़ा

दोनों को बारी-बारी से और झूले पर बैठ गया। इस समय वह युसुफ़ की ज़बरदस्ती के लिये उसे मन ही मन धन्यवाद दे रहा था। यशवन्त की कोमल कल्पनाओं के पंख लग गये। रोमांचित हो, अलसित नयनों से ज्योति की ओर देख, विभोर शब्दों में बोला, "मारो पैंग ज्योतिर्मयी! आज तुम्हारे साथ एक ही झूले पर झूल कर जीवन के सबसे बड़े सुख का अनुभव हो रहा है। आज शायद मैंने वह पा लिया जिसे पाने के लिये मैं कब से इन्तज़ार कर रहा था। झूलो ज्योति, खुल कर झूलो। मेरा अकिंचन मन भी तुम्हारे साथ झूले, ऐसा झूले कि आकाश के उच्चतम स्तर को छूले!" अधमुँदे नेत्रों से यशवन्त ज्योति की ओर देखता रह गया।

ज्योति ने फिर ज़ुलेख़ा की ओर देखा, भेदभरी आँखों से। वह मुस्कराई और बोली, 'ठाकुर साहब, झूलने के लिये हम तैयार हैं लेकिन गाना आपको होगा।"

"मैं, मैं गाना क्या जानूँ? नहीं भाई, तुम्हीं कृपा करो।"

"सो तो नहीं होने का। काम का बटवारा कर लीजिये। मेहनत का काम हम दोनों ने पहिले से ही ले लिया है। आप भी अपना काम कीजिये। आप तो कवि हैं न! कुछ संगीतमय, प्राणों को स्पन्दित करने वाला राग छेड़िये। कवि, आप हृदय वाले हैं। हृदय के भावुक प्रवाहों से सारा वातावरण मुखरित हो रहा है। आप की मोहक, सुकोमल स्वर लहरी, भावपूर्ण, दर्दभरी, हृदय में कसक पैदा करने वाली, टीस उठाने वाली, काव्य पंक्तियाँ हमारे उत्कण्ठित कर्ण कुहरों को रसास्वादन करायें, हृदय के कोमलतम मधुर तारों को छू कर झंकृत कर दें, हम आनन्द विभोर हो जायँ—गाओ कवि! ज़ुलेख़ा के सोये अरमानों और भूली स्मृतियों को जगा दो। ज़ूली, तू भी कलाकार से प्रार्थना कर—आज की यह शुभ घड़ी, यह पावन वेला हमारे जीवन में अमिट लकीर बन कर रह जाये, जिसकी सुखद संस्मृतियों के सहारे हमारा भविष्य रुपहला और सुनहला बनता जाये। ज़ूली, इधर देख बहिन।"

ज़ुलेख़ा अब भी कुछ न बोली, कुछ न बोल सकी। उसकी आँखों के सामने जो कुछ हो रहा था, वह जो कुछ देख सुन रही थी, सब सपने जैसा था, सपने की तरह हो रहा था, शायद सपने की भाँति समाप्त भी होने वाला था। स्वप्नदर्शी ज़ुलेख़ा विह्वल, उद्भ्रान्त, पगली सी, टुकुर-टुकुर ज्योति की ओर देखती रह गई। उसकी आँखों के जलकण उसकी पुतलियों पर झिलमिल पर्दा डाले हुये थे। उसकी आँखें यशवन्त को साफ़ न देख पातीं, लेकिन उसे इस बात का एहसास ज़रूर हो रहा था कि जिस कल्पित प्रतिमा की पूजा-अर्चना जाने-अन जाने वह किया करती थी वही प्रतिमा साकार-सदेह उसके पास उपस्थित है। कभी उसे लगता कि उसके और यशवन्त के बीच की लम्बी-चौड़ी दूरी सिकुड़ती जा रही है, सिकुड़ गई है और दोनों का अन्तर समाप्त हो गया है, कभी लगता यह सब मिथ्या है, झूठ है, असत्य है। कहाँ यशवन्त ठाकुर और कहाँ वह—ज़ुलेख़ा, ज़ुलाहे की बेटी! उहूँ, हो नहीं सकता। यह अन्तर क़ायम रखने के लिये बनाया गया था। वह सब कुछ देखती, सुनती, समझती भी अनदेखी, अनसुनी, असम्भव समझना चाहती थी। उसके हृदय में एक तूफ़ान उठ रहा था, प्रबल वेग से एक आँधी चल रही थी, आँखों से छीज-छीज कर रसविन्दु उमड़े पड़ते खारे, गर्म, चमकते!

ज्योति ने ज़ुलेख़ा की ठोढ़ी छू ऊपर उठाकर कहा, "ज़ूली, यश ठाकुर सामने बैठे हैं, तू देख नहीं रही है?"

"देखने की कोशिश कर रही हूँ।" ज़ुलेख़ा के आर्द्रस्वर ने ज्योति के दिल को हिला दिया। लगा, कहीं स्वयं वह ही अपना संतुलन न खो बैठे। विचलित होने के पहिले ही सभँल जाना चाहता थी। राज़ का पता न चले, यशवन्त किसी तरह ज़ुलेख़ा की ओर आकर्षित हो जाँय, ज़ुलेख़ा भी अपनी चीज़ पा जाय, यशवन्त की ओर ज्योति का ध्यान नहीं है यह बात भी यशवन्त को मालूम हो जाय, और यह सारा काम इतनी ख़ूबी से हो जाय कि उस अवसर का पूरा सदुपयोग हो

सके, झूठ और मक्कारी से काम न लेना पड़े, ये सारी बातें ज्योति को करनी थीं। थोड़ा बहुत पहिले से सोच रखने पर भी वह इतने सारे कामों के लिये तैयार होकर नहीं आई थी।

ज़ुलेख़ा का तो इधर ध्यान ही नहीं जा सकता था। वह बेचारी प्रतीक्षा और प्राप्ति के आकस्मिक सुख से अभिभूत हो इतनी विभोर हो गई कि उसकी इन्द्रियों ने शिथिलता के कारण जैसे क्रियाशीलता ही छोड़ दी। निष्क्रिय और उदासीन सी कभी वह ज्योति को देखती, कभी यशवन्त की ओर देख लेने का प्रयत्न करती।

उस ओर यशवन्त का भावुक हृदय ज्योति के चपल, चंचल नयनों, सुगठित शरीर और निखरी जवानी पर लोट पोट हो रहा था। साँवली, सलोनी, मृगेक्षिणि ज़ुलेख़ा आकर्षक और मोहिनी होते हुये भी अभी तक यशवन्त को अपने आगे झुका सकने में, उसका दिल पानी करने में सफल नहीं हुई थी। प्रेम निवेदन के पहिले प्रेम की अनुभूति होनी आवश्यक है। इस अनुभूति के लिये पहिले ही जिन उपकरणों की आवश्यकता है, उनके न होने से प्रेम सम्बन्धी कमज़ोरियों के पैदा होने का सवाल ही नहीं उठता। फिर यशवन्त के हृदय में ज़ुलेख़ा के प्रति दुर्बलता क्यों और कैसे उत्पन्न हो? तो क्या उसकी ओर आकर्षित न होकर यशवन्त ने कुछ अस्वाभाविक काम किया? ज्योति के रहते हुये और इतने पास, ऐसे वातारण, ऐसी पृष्ठभूमि में साथ रहते हुये, यशवन्त का ज़ुलेख़ा की ओर जागरुक और सचेष्ट झुकाव का न होना अस्वाभाविक नहीं था। भद्रता और शिष्टाचार के नाते उसने पूछा ज़ुलेख़ा की ओर स्नेह से देखकर, "आप इतनी चुप क्यों हैं? कुछ बोलिये, हँसिये, कहिये। यह दिन, यह घड़ी, यह मौक़ा चुप रहने का थोड़े ही है।"

'आप', उफ़, डंक मार दिया इस शब्द ने! क्या 'आप' की जगह 'तुम' नहीं कहा जा सकता था? ज़ुलेख़ा काँप गई। झेंप कर, सिर

नीचा किये बोली, "गाइये न आप !" यशवन्त को चुप होना पड़ा। ज्योति के चेहरे पर प्रसन्नता की रोशनी फैल गई। उसने फिर यशवन्त से ज़ोर देकर कहा, "अब गा दीजिये, मेरी नहीं तो कम से कम ज़ुलेख़ा की बात तो रख लीजिये। गाइये।"

"अच्छा, जैसी मर्ज़ी," अपने को सँभाल कुछ सोच कर यशवन्त ने कहा, "आप ही को जीत सही।"

"क्यों, हारने से आप घबराते हैं ?" ज्योति ने फबती कसी।

"नहीं, घबराता तो नहीं। इस हार में ही तो जीत है ! कितनी मीठी हार है यह ?"

"तो गाइये न फिर।" दुलरा कर ज्योति ने कहा।

यशवन्त को गाना ही पड़ा :

मनवा लहर-लहर लहराय।
रस से भरी चली पुरवैया, चंचल मन बौराय॥

सुख से साजन सेज सजाऊँ, लोक लाज बिसराय,
सजल नयन से पंथ निहारूँ, जीवन ज्योति जराय !

मैं खेलूँ पिय की गोदी में, चकित, लजाय, डराय,
ज्यों बिजुरी घन की गोदी से, भाग भाग इतराय !

मनवा लहर-लहर लहराय !!

यशवन्त की सुरीली तान और दर्दीले कण्ठ ने समा बाँध दिया। स्वयं ज्योति थोड़ी देर के लिये जैसे खो गई, आत्मविस्मृत हो गई। और, ज़ुलेख़ा, अडोल, स्थिर, कवि को देखती रही, थकी सी, छकी सी !

गाना समाप्त हो गया परन्तु झूला अपने स्थान पर यों ही अडिग पड़ा रहा। पेंगे मारने की सुधि किसी को न थी। यशवन्त ने कहा,

"कहिये, मुझसे गाना गवा लिया। और झूला हिला ही नहीं। ऐसे ही आप अपनी बात पूरी करेंगी ?"

ज्योति और ज़ुलेख़ा पर जैसे घड़ों पानी पड़ गया। 'क्या कहें, कैसे कहें ?'

"लेकिन इसकी ज़िम्मेदारी तो आपके ही ऊपर है। आप इतना सुन्दर गाना न गाते तो हमारी यह हालत क्यों होती ?" ज्योति ने स्वरज्ञा में कहा।

"इसे मैं प्रशंसा समझूँ या शिकायत ?" ज्योति की बातों का रस ले, मुग्ध हो यशवन्त ने पूछा।

"सो तो आपकी मर्ज़ी पर है।" धीरे से ज़ुलेख़ा ने कहा। यशवन्त को गुदगुदी सी लगी, सिहर गया। पुलकित हो बोला,

"अब आप लोग कुछ सुनायें। देखिये मेरी प्रार्थना मान लीजिये।"

झूला डोलने लगा। उसकी गति तेज़ होने लगी। ज्योति और ज़ुलेख़ा का भी स्वर चढ़ने लगा। मुक्त कण्ठ से दोनों ने कजली गाना शुरू किया। पेंग चलती रही, झूला चलता रहा, कजली चलती रही। सारा बाग़ जैसे रसीले पंचम स्वर से गूँजने लगा। परिस्थिति और वातावरण भूल ज्योति और ज़ुलेख़ा के उड़ते आँचल को छू कर आने वाले वायु के मधुर झोंकों से सिहर सिहर कवि हृदय यशवन्त आनन्द सागर में लहराने लगा, भीगे, बदराये आसमान से बातें करने लगा।

और, यह प्रक्रिया तब समाप्त हुई जब युसुफ़ ने पास आ, ऊँचे स्वर में कहा, "अरे यश, चलेगा भी, या यहीं रहना चाहता है। तू तो जैसे इन्हीं लोगों का हो गया।"

झूले की गति रुकने लगी। धीरे-धीरे वह स्थिर हो गया। यशवन्त झेंप कर नीचे उतर आया। ज्योति और ज़ुलेख़ा भी सिर झुका एक ओर खड़ी हो गईं। सरकार जो आ गये थे इतने पास!

"अच्छा चलूँ" नमस्कार की मुद्रा में यशवन्त ने कहा।

"शाम को आइयेगा ?" ज़ुलेख़ा के मुँह से निकल गया।

"ज़रूर" युसुफ़ की ओर देख यशवन्त ने कहा और उसके साथ ही चल दिया।

दोनों मित्र हाथ में हाथ डाले बातें करते इधर उधर देखते बाग़ के उस छोर तक चले गये। जब तक वह दिखाई दिये ज़ुलेख़ा उनकी ओर देखती रही। और ज्योति अपनी ज़ूली की ओर देखती रही ऐसे जैसे अपना सारा स्नेह उँडेले दे रही हो।

ज़ुलेख़ा ने ज्योति को देखा, ज्योति ने ज़ुलेख़ा को और, दोनों कसके चिपट गईं एक दूसरे से। ज्योति को लगा, ज़ुलेख़ा सुबक रही है, उसके कन्धे पर सिर धरे !

लौटते हुये रास्ते में युसुफ़ ने कहा, "यार, सचमुच जोत हसीन लड़की है, कितनी चटख़, चटपटी और तेज़ है। मैं तो दूर ही से सब कुछ भाँप रहा था दोस्त ! कर लो यार इससे शादी।"

"देखो भाई युसुफ़, तुमसे मेरी शिकायत है। तुमने ज्योति के बारे में बातें करते हुये जिन-जिन शब्दों का प्रयोग किया था वह सब क़ाबिले एतराज़ थे। तुम जानते हो ज्योति को मैं प्यार करता हूँ। उसकी शान के खेलाफ़ हैं तुम्हारे ये अलफ़ाज़ ! समझते हो, अगर ज्योति को मालूम हो जाय तो वह कैसी दावत करेगी तुम्हारी ?" अर्ध गम्भीरता से यशवन्त ने कहा।

"जा भी यार, तू इन लौंडियों को क्या जाने ? इनका दिल तो उछलता हुआ गेंद है। बोदे लोग क्या इनसे खेलेंगे ? तुझे मेरी बातें बुरी लगीं, अगर जोत को मालूम हो जाय, तो तेरी जान की क़सम, मेरे ऊपर वह फ़िदा हो जाय। अगर कह तो मैं करके दिखा दूँ। लौंडियाँ खेलाड़ी यार चाहती हैं, खेलाड़ी।"

"अच्छा बस करो। बताओ, ज़ुलेख़ा कैसी लगी तुम्हें ?" बात टाली यशवन्त ने।

"कौन, वह काला नमक ! बस वह है कट्टो माल। तेरे जोत से लाख दर्जे अच्छी। बस चले तो मैं उसे उड़ा लूँ। कौन है यह ज़ुलेख़ा !"

"दीन मोहम्मद जुलाहे की बेटी।"

"वाह रे बूढ़े। तेरी भी क्या क़िस्मत है ! गुदड़ी की लाल है यार ज़ुलेख़ा।" कुछ सोच कर युसुफ़ ने फिर कहा, "किसी रईस घराने में होती तो माहेलक़ा सी अपनी किरन बिखराती सब को ठंढक पहुँचाती। ग़रीब है, बदक़िस्मत ! काँटों पर खिली, शायद उस पर ही मुर्झा जाय।" युसुफ़ गंभीर हो गया।

"ऐसे उदास क्यों हो गये युसुफ़ ? क्या हुआ ?" यशवन्त ने पूछा।

"कुछ नहीं यश। एक पुरानी बात याद आ गई। वालिद बुज़ुर्ग ने मरते वक़्त एक बात कही थी। उसे मैं भूल गया था। उसी की याद आगई एकाएक। अब्बा ने इसी दीनू जुलाहे के लिये वसीक़ा बाँधने और उसका ख़्याल रखने के लिये कहा था। दीनू जुलाहा अब्बा का लड़कपन का साथी था। कई बार उसने अब्बा की जान तक बचाई थी। अब्बा उसके एहसानों से दबे थे। बड़े कैंड़े का आदमी है यह। अब्बा ने कहा था, इसकी वफ़ादारी पर इत्मीनान किया जा सकता है। लेकिन यश मैंने अब्बा की बातें भुला दीं। नये तरह के कपड़ों की आमद की वजह से उसका कारोबार चौपट हो गया है। कम्पनी की अमलदारी में सबसे ज़्यादा नुक़सान इन जुलाहे बेचारों का हुआ है। हमारा तन ढँकने वाले ये मज़दूर दाने-दाने को मोहताज हो गये हैं। ढाका और मुर्शिदाबाद के जुलाहों का हाल तुमने सुना ही होगा। जानते हो, यह अगूँठा दिखाने का तरीक़ा कब से शुरू हुआ है ?" युसुफ़ ने ठंढी साँस भर कर कहा, "कम्पनी के अमले जुलाहों

के पास जाकर कपड़ों के लिये हुक्म दे आते थे। जुलाहे उतने कम वक़्त में उतना कपड़ा तैयार कर ही नहीं सकते थे। नतीजे में उनके गाँव घर सभी लूट लिये जाते, वह बर्बाद कर दिये जाते, उनका नामो-निशान मिटा दिया जाता। इसी वहशियाना ढंग से उनका कारोबार चौपट कर दिया गया। इस ख़ूनी कहानी की याद आते ही यश, नसों में उबाल पैदा हो जाता है। हाँ, तो जब कम्पनी के अमले कपड़ा माँगने जाते तो ये जुलाहे अपना कटा हुआ लहूलोहान अगूँठा दिखा दिया करते थे। जानते हो, जुलाहों का सारा काम अगूँठे के सहारे ही होता है। उन्होंने सोचा, न अगूँठा रहेगा, न उन्हें जबरदस्ती काम करने को कहा जायेगा। लेकिन कटे अँगूठे की यह ख़ूनी कहानी लोग भूलते जा रहे हैं। वक़्त भी क्या चीज है? आज हम तुम भी उसी कम्पनी बहादुर की जय मानते हैं। उसी के सहारे हमारी तुम्हारी रोटी जो चलती है। कम्पनी बहादुर के संगीनों के साये में ही तो हम तुम पलते हैं।" अपने प्रति घृणा प्रदर्शित करते हुये युसुफ़ ने यशवन्त की ओर देखा।

यशवन्त कुछ और सोच रहा था। उसका ध्यान ज़ुलेख़ा के शान्त, उदास, सकरुण चेहरे पर लगा हुआ था। युसुफ़ की बातें वह जैसे सुनकर भी सुन नहीं रहा था। इस समय उसके सामने जुलाहे की साँवली, सलोनी बेटी ज़ुलेख़ा का भरभराया रक्ताभ मुखड़ा था, सजल डबडबाये नयन थे, बेबसी, लाचारी, उदासी की उस प्रतिमा का आत्म-समर्पणात्मक किन्तु मूक व्यक्तित्व था, ऐसा कि जो कुछ न कहते हुये भी सब कुछ कह रहा था और देखने वालों को बरबस अपनी ओर खींच, अपने असर में डुबोये दे रहा था। यशवन्त का ध्यान उसी ओर लगा था, वह उसी में डूबा हुआ था।

गुथी हुये भौंहों के नीचे झुकी हुई, सतेज आँखों से यश को घूर युसुफ़ ने फिर कहा, "यश, सुनते नहीं हो, किधर है तुम्हारा ध्यान?"

"ऐं, क्या कहा तुमने?" चकपका कर यशवन्त ने कहा।

"मैं इतनी बातें कह गया और तुमने सुनी ही नहीं। तुम्हारे कान कहीं चरने गये थे क्या ? अजब आदमी हो तुम भी।"

"अच्छा, फिर से कहो", मुस्कराते हुये यशवन्त बोला।

"ज़ुलेख़ा को देखकर दीनमोहम्मद की याद आई और दीनमोहम्मद की याद आते ही वह नक़्शा आँखों के सामने खिंच गया जो हमारे ख़ून में गर्मी पैदा कर देता है। यश, कम्पनी बहादुर के काले कारनामों का चर्चा कर रहा था मैं। यह बूढ़ा, फटे हाल दीनमोहम्मद सल्तनते मुग़लिया और बाद के नावाबों की सारी शानशौक़त का बचा खुचा निशान है; एक ऐसा निशान जिसे देखकर कलेजा फटता है। इसी हिन्दुस्तान की सर ज़मीन पर जिन लोगों ने राज किया था, जो लोग यहीं के थे और जिन्हें यहीं के पानी और हवा ने पाला-पोसा था उन्हीं की औलाद आज दाने-दाने को मोहताज है। हमारा क्या, हम तो अपनी क़ौम के ग़द्दार, कम्पनी के टुकड़ों पर पलने वाले ऐसे इन्सान हैं जिन्हें अपने मुल्क और मिल्लत, अपनी क़ौम और बिरादरी से मोहब्बत नहीं। उनके गर्म-गर्म लोहू को पीकर डकारने वाले हम कितने गिरे हुये हैं—यही मैं कह रहा था। देखो न, हम तुम मज़े में रहते हैं। क्यों ? इसलिये कि यहाँ की जनता का ख़ून चूसने में, उन्हें ग़ोरों के ख़ूनी पञ्जों में कसे रखने में, हम कम्पनी का साथ देते हैं। जब मैं यह सोचता हूँ शर्म और ग़ैरत से सिर झुक जाता है। और मज़ा यह है कि थोड़ी देर बाद सब कुछ भूल अपने ऐशो आराम के चक्कर में फँस अपने फ़रायज़ को लात मार देता हूँ। हमें फ़ुर्सत ही नहीं मिलती कि इन ग़रीबों, दुखियों के साथ उठ बैठकर इनके लिये कुछ अमली काम कर इनकी बदहाली दूर करें।"

"बदहाली दूर करेंगे ? उनकी बदहाली दूर करने के माने हैं अपने लिये बदहाली बुलाना। अगर हमें तरक़्क़ी करनी है और मौज उड़ाना है तो इन्हें ग़रीब, परेशान और दुखी रहना ही पड़ेगा। ऐसी बातें क्यों सोचो जिनसे अपना ही नुक़सान हो ?" यश ने कहा।

"यह भी ठीक है यश ! ईमानदारी, सचाई, दयानतदारी और दौलत में बहुत कम रिश्ता है। शायद कोई रिश्ता नहीं है। और हम अपनी दौलत छोड़ भी नहीं सकते आसानी से। लेकिन सोचता हूँ क्या इसी तरह दूसरों की गाढ़ी कमाई पर पलकर हम अपनी सारी ज़िन्दगी गुज़ार देंगे ? क्या हम अपना फ़र्ज़ पूरा नहीं करेंगे ?"

"पूरा कर सकते हैं अपना फ़र्ज़, बशर्ते कि हिम्मत हो, क़ुर्बानी का माद्दा हो। सारी जनता परेशान है, कितने राजे महाराजे जिनकी रियासतें छिन गई हैं और जो कम्पनी से ग्वार खाये बैठे हैं इस समय कुछ न कुछ करना चाहते हैं। मुझे जहाँ तक मालूम पड़ता है, कुछ ही दिनों में एक तूफ़ान उठने वाला है, ज्वालामुखी फूटने वाली हैं। उस वक़्त हम अपना फ़र्ज़ पूरा कर सकते हैं। लेकिन उसमें राज रियासत ख़त्म हो सकती है, जान भी जा सकती है। इतने के लिये अगर तैयार हो तो इन्तज़ार करो। मौक़ा आते ही कूद पड़ना होगा।" यशवन्त ने गंभीर होकर कहा।

युसुफ़ चुप रहा। यशवन्त की ओर थोड़ी देर तक देखता रहा। यशवन्त ने फिर कहा, "दोस्त मज़ा तो आ जाय अगर एक बार यहाँ से वहाँ तक आग लग जाय। ये राजे रजवाड़े अगर चाहें तो बहुत कुछ हो सकता है। घर में बातचीत चल रही थी। उन लोगों को ख़बर मिली है कि तैयारी सरगरमी से हो रही है। फ़ौज बिगड़ने वाला है। कम्पनी ने हमें ग़ुलाम बनाया और अब बेधरम भी करना चाहती है। मुँह से गऊ की चरबी लगा हुआ ताँत खींचना पड़ता है हिन्दुओं को और सुअर की चरबी लगा हुआ ताँत खींचना पड़ता है मुसल्मानों को। इस तरह दोनों को बेधरम कर ईसाई बनाना चाहती है कम्पनी। फ़ौज में वातावरण गर्म है। सिपाही अपनी जान दे देंगे, धर्म नहीं देंगे। देखो क्या होता है ? मुझे तो उम्मेद काफ़ी है।"

बातें करते-करते अपने बँगले पर पहुँच गया युसुफ़। अब यशवन्त बातें अधिक कर रहा था। युसुफ़ या तो चुप रहा या एक दो सवाल

बीच में पूछ लिया करता। उसके चेहरे पर उदासी थी, मुद्रा गंभीर, पेशानी पर बल पड़े हुये। मसनद के सहारे लेटते हुये यशवन्त की की ओर तेज़ निगाहों से देख युसुफ़ ने कहा, "तो दोस्त, अस्ल औलाद हुआ अपने बुर्ज़गों की तो, क़सम ख़ुदा की, पीछे न हटूँगा।"

युसुफ़ के इस आकस्मिक उद्‌गार और शपथपूर्ण प्रतिज्ञा के लिये पहिले से तैयार न होने के कारण यशवन्त सकपका गया। वह चकित और उद्‌भ्रान्त सा युसुफ़ की ओर देखता रहा। युसुफ़ आँखें बन्द किये मसनद के सहरे पड़ा था।

यशवन्त फिर ध्यान मग्न होने लगा। दूसरी ओर मुँह किये वह सोचता रहा। अब क्या होगा? क्या सचमुच किसी उथल पुथल की आशंका है? क्या घर में होने वाली बातों में कोई सार है? क्या वह स्वयं भी उस प्रज्वलित अग्नि को दावानल की तरह चारों तरफ़ बढ़ाने में सहायता देगा? अगर हाँ, तो ज्योति का क्या होगा? उसकी प्रेयसी, उसकी सर्वस्व का क्या होगा? क्या वह राह का रोड़ा बनेगी? यशवन्त ने सोचा—क्यों न शादी की बात इस समय टाल दी जाय? लेकिन क्यों? किस लिये? उसने युसुफ़ की ओर अधमुँदी आँखों से देखा। युसुफ़ शिथिल पड़ा था, छत की ओर आँखें गड़ाये!

# ३

संध्या समय बाग़ में फिर झूला झूलने वालों की भीड़ जुटी। भीगी-भीगी शाम, घड़ी भर में अँधेरा होने वाला था। पश्चिम में सतरंगे बादलों की ओट में लुका छिपी खेलते अंशुमाली अन्तिम विदा की तैयारी कर रहे थे। मनोरम वातावरण था, ठंढी हवा बह रही थी। अपने झूले पर ज्योति और ज़ुलेख़ा दोनों आ डटीं।

यशवन्त सिंह युसुफ़ के साथ चले तो सामने जागीरदार ठाकुर भगवान सिंह आते दिखाई दिये हौले-हौले। यशवन्त को पता था कि ये ज्योति के ताऊ हैं। झुककर ठाकुर साहब ने युसुफ़ को सलाम किया पुराने दरबारी ढंग से। युसुफ़ ने अभिवादन किया और गले में हाथ डालकर बोले, "कहो ठाकुर साहब, क्या हाल-चाल हैं आपके? कैसे भूल पड़े इधर इतने दिनों बाद?"

"हुज़ूर की ख़िदमत में ही हाज़िर हुआ था। लाल यशवन्त सिंह से मेरी ज्योति की शादी की बात-चीत चल रही थी। सो पक्का कर लेना चाहता हूँ। अब इन्हीं के 'हाँ' कहने की देर है। घर वाले तो सब राज़ी हैं, ये तैयार हो जाँय तो कृतज्ञ हो जाऊँ। क्यों बेटा?" यशवन्त सिंह की ओर देख ठाकुर भगवान सिंह ने कहा, "अब तो तुम राज़ी हो? तुम्हें तो कोई इनकार नहीं है?"

यशवन्त सकपका गया। उसकी समझ में न आया, क्या कहे। वयोवृद्ध ठाकुर भगवान सिंह के याचना पूर्ण शब्दों ने उसके ऊपर न मालूम कैसा असर डाला। वह घबरा गया। पता तो यह था कि

घर वालों से बातें हो रही हैं और वे शादी करने के लिये तैयार भी हैं, और यह कि केवल उसी की स्वीकृति की देर है। निश्चय ही उसे यह सम्बन्ध स्वीकार भी था। पर संकोच अक्सर दामन देर में छोड़ता है। यशवन्त कुछ न बोल सका। सिर नीचा कर वह किसी और तरफ़ देखने लगा।

युसुफ़ के चेहर पर मुस्कराहट की एक लहर दौड़ गई। वह यशवन्त की ओर देखकर कुछ कहना चाहता था। लोक-लाज का ख़याल कर वह सँभाल ले गया। ठाकुर साहब की ओर देख कर कहने लगा, "हाँ, अच्छा तो रहेगा। ख़ान्दान का भी जोड़ रहेगा, लड़की भी सुनते हैं अच्छी है। यशवन्त को मान तो लेना चाहिये।"

"हुज़ूर को मेहरबानी होगी तो भैया इन्कार न करेंगे। और तो मैं किस लायक़ हूँ। हाँ, जोड़ी अच्छी होगी। भगवान ने जैसे इस बात को ध्यान में रखकर ही दोनों को गढ़ा था। होनी को कान जाने? भगवान पहिले से ही लिख देते हैं। जो लिखते हैं उसे मिटाया नहीं जा सकता। मुझे तो विश्वास है यह भगवान की लिखी जोड़ी है।" बूढ़े भगवान सिंह ने ललचायी आँखों से यशवन्त की ओर देखा।

यशवन्त अब भी चुप रहा। "अल ख़ामोशी, नीम रज़ा" कहते हुये युसुफ़ मुस्करा पड़ा। "आपके घराने की लड़कियों का क्या कहना! कौन नहीं जानता ठाकुर भगवान सिंह जागीरदार को? बहादुरी, फ़ैयाज़ी और दरियादिली जिस घराने का शेवा रहा हो उस घराने के लड़कों बच्चों का क्या कहना है? वालिद बुज़ुर्ग तो आपकी तारीफ़ करते थकते न थे। ठाकुर की लड़की है, बहादुर तो होगी ही।"

"हाँ हुज़ूर, सब विद्या जानती है। घोड़सवारी, तीर, बर्छी, भाला, लाठी, तलवार सब जानती है। टेढ़े सीधे गा बजा लेती है। पढ़ने लिखने का अधिक शौक़ है। भाषा जानती है। संस्कृत भी पढ़ाया है। कविता करती है।" बूढ़े ठाकुर साहब एक साँस में सब कुछ गिना गये।

"ज़रा बाग़ की ओर जा रहा था। आप भी चलेंगे उधर?" चलते चलते युसुफ़ ने कहा।

"चलिये, चला चलूँगा हुज़ूर के साथ। आज मेरी क़िस्मत ने साथ दिया है। यशवन्त जैसा लड़का पाकर आज मैं सचमुच कृतार्थ होगया।" भगवानसिह की आँखों में ख़ुशी के आँसू आ गये।

बाग़ के पास पहुँच यशवन्त को एक ओर छोड़ युसुफ़ ने भगवान सिंह से कहा, "ठाकुर साहब, आपने बाक़ी बातें तो कर ही ली होंगी? यशवन्त मेरा साथी है। स्वभाव बहुत अच्छा है। दिलेर है, हिम्मती और दयावान। लोहे जैसे मज़बूत शरीर और मज़बूत छाती के नीचे बहुत मुलायम दिल है दूध की तरह साफ़ और निर्मल। मेरा ख़्याल है कि आपने लड़का बहुत अच्छा चुना। आपकी लड़की भी यशवन्त के साथ ख़ुश और सुखी रहेगी इसका मुझे यक़ीन है।"

"आपने मेरी लड़की को देखा तो होगा नहीं? आई तो होगी इस समय झूला झूलने। शायद इसी भीड में कहीं हो।" कहकर भगवान सिह ने ध्यान से बाग़ के झूला को देखना शुरू किया। कुछ दूर पर ज्योति और ज़ुलेखा धीरे-धीरे पेंग मारती गा रही थीं। भगवान सिह ने ज्योति को पहिचान लिया। "देखिये, वह उस झूले पर, उस साँवली लड़की के साथ मेरी ज्योति झूल रही है।" उँगली से इशारा करते हुये बूढ़े ठाकुर साहब ने बताया युसुफ़ को।

"जी हाँ, जी हाँ, देख लिया मैंने। बड़ी अच्छी लड़की है। बड़ी अच्छी जोड़ी होगी।" झुककर कृतज्ञता प्रकाशित करते हुये युसुफ़ ने कहा।

"अच्छा, तो मैं चलूँ हुज़ूर। अब मेरा यहाँ कोई काम नहीं। आप तो हैं ही। यशवन्तसिह से बातें भी आप की होंगी। अब आपका भरोसा करके जा रहा हूँ।" कहते हुये झुककर सलाम करने के बाद ठाकुर भगवान सिह चले गये तो युसुफ़ ने यशवन्त को ढूँढा। वह एक पेड़

के सहारे खड़ा कभी ज्योति और ज़ुलेख़ा और कभी युसुफ़ के साथ बातें करते हुये ठाकुर भगवान सिंह को देखता रहा।

यशवन्त की मनोदशा बदल गई थी। सुबह उसका मन हल्का था। प्रेम के हल्के हिलोरों के साथ उसका चंचल भावुक हृदय थिरक थिरक कर रह जाता था। लेकिन अब जबकि ज्योति से उसका सम्बन्ध निश्चित रूप से पक्का हो गया था उसे कुछ बोझ सा मालूम पड़ने लगा। हल्के-फुल्के प्यार कर लेना एक बात है और सचमुच ही किसी व्यक्ति विशेष से आजीवन सम्बन्ध जोड़ लेना बिल्कुल दूसरी बात। ज्योति उसकी हो चुकी। वही ज्योति जो अभी सबेरे उसके साथ झूला झूल रही थी, जो अपनी मादक मधुराई और निखरे यौवन से उसके अंग-अंग को स्पन्दित कर रही थी, विभोर कर रही थी वही ज्योति अब उसकी होगई। आजीवन उसकी रहेगी। दोनों का सुख-दुख एक होगा, दोनों का आमोद-प्रमोद एक होगा। दोनों का जीवन एक होगा। कैसा परिवर्तन है यह! एक से दो होना और दोनों में फिर ऐसी एकता कि दोनों मिलकर एक हो जाँय, इकाई बन जाँय। सानिध्य, साहचर्य, सहयोग, सहजीवन के अटूट स्वर्ण पाश में बँधने की पुलकमान अनुभूति! यशवन्त का शरीर झनझना उठा, तार-तार हिल गये।

युसुफ़ ने यशवन्त के कन्धे पर ज़ोर से हाथ धरते हुये कहा, "दोस्त, क़िस्मतवर हो तुम! बूढ़ा बज़ादार है, घर अच्छा है। जोत का क्या कहना है। मुझे यह शादी पसन्द आ गई। लेकिन यार मामला इतना आगे बढ़ गया है यह तुमने मुझे बताया नहीं। सबेरे अपनी मौज में जाने क्या-क्या बक गया। मैं शर्मिन्दा हूँ दोस्त! भाभी से कहना मत कुछ, वरना मालूम नहीं क्या सोचेंगी मेरे बारे में।"

"अच्छा, तो क़द्र बढ़ गई ज्योति की तुम्हारी आँखों में?" सबेरे वाली युसुफ़ की उच्छृंखल बातों का बदला लिया यशवन्त ने।

हतप्रभ हो युसुफ़ ने कहा, "यश, बहाव और मौज में कही हुई

बातों को इतनी देर तक याद नहीं रखना चाहिये। मुझे क्या पता था कि सचमुच ही जोत मेरी भाभी होने वाली हैं। पता होता तो मज़ाक़ करने की कौन कहे मैं सीधे उनके पाँव छू लेता। तुम जानते हो मेरे स्वभाव को। एक लहर में बहता रहता हूँ हमेशा। दीन दुनिया की ख़बर तो रहती नहीं मुझे। ज़ुबान पर, ओठों पर जो बात आई, झट से निकाल दी बाहर। अच्छा, छोड़ो इन बातों को। चलते हो उधर ?"

यश ने आँखें घुमाईं। देखा झूला चल रहा है। ज्योति और ज़ुलेख़ा पेंगे मारती जा रही हैं। ज्योति के प्रति उसके हृदय में स्नेह उमड़ आया। लेकिन पास ही में ज़ुलेख़ा भी तो थी। जुलाहे की बेटी, जवान, [illegible], मोहक! उसके दिल में भी अरमान होंगे, कामनायें होंगी। लेकिन उसे क्या मिलेगा ? कौन मिलेगा ? दो रोटियों के लिये ज़िन्दगी भर तरसने वाला फटे हाल जुलाहे का छोकरा, जो जन्म लेने के बाद अपने अरमानों, आकांक्षाओं, लालसाओं को माँ के आँचल में ही छोड़ आया होगा; नाकामियाँ जिसकी दामनगीर हैं, मोहब्बत का जिसे एहसास ही नहीं हो सकता, जिसकी जवानी पर उभरने के पहिले ही बुढ़ापे की काली निष्प्राण छाया पड़ चुकी होगी—यशवन्त का दिल बैठने लगा। वह दूसरी ओर देखने लगा। युसुफ़ के सवाल का जवाब देना वह भूल गया।

"क्या सोच रहे हो यश ?" युसुफ़ ने फिर कहा, "ख़ुशी के इस मौक़े पर ऐसी गंभीरता अच्छी नहीं लगती। बताओ, क्या सोच रहे हो ?"

"कुछ नहीं युसुफ़। तुम से क्या बताऊँ ? कुछ कहूँगा तो समझोगे मैं पागलपन की बातें कह रहा हूँ। मुझे चुप रहने दो, मुझे चुप ही रहना चाहिये।"

"चुप रहना चाहिये। बड़े मूर्ख हो जी तुम। चुप रहने का क्या मतलब है इस वक़्त ? मैंने कहा, चलो जोत के पास चलें। बजाय

इसके कि हाँ ना करते तुम जाने क्या सोचने लगे। कविता की कोई कड़ी सूझ गई क्या ? छत्री होकर तुम्हें कवि नहीं होना चाहिये था। छत्री मैदान में जौहर दिखाते हैं और घर में मौज की ज़िन्दगी बिताते हैं। एक तुम हो कि मौक़े बे मौक़े आसमान की ओर ताकने लगते हो। ऐसे स्वभाव से मुझे नफ़रत है चलते हो या नहीं जोत के पास ?" युसुफ़ चिढ़ गया था।

"रुको ज़रा, अभी चलता हूँ।" यश ने कहा।

"क्यों, अभी चलने में क्या है ? थोड़ी देर में साँझ हुआ चाहती है। सब खेल ही ख़त्म हो जायेगा तो चलकर क्या करोगे ?" युसुफ़ ने फिर ज़ोर दिया।

"युसुफ़, सुनो। इस समय मेरे हृदय की दशा विचित्र है। एक बोझ सा लदा मालूम पड़ता है। जो भारी है। पहिले ऐसा कभी नहीं हुआ था। आज ठाकुर साहब के चले जाने के बाद से हृदय की गति ही जैसे बदल गई है। यह तो निश्चय ही हो गया है कि मेरी शादी ज्योति से होगी। मैं उसे चाहता हूँ यह भी निस्सन्देह बात है। लेकिन मन जैसे उमड़ता नहीं है। सामने ज्योति झूला-झूल रही है। लेकिन यह इच्छा नहीं होती कि अभी दौड़कर उसके पास जाऊँ, झपट कर माथा चूम लूँ और धीरे से कहूँ, 'ज्योति, मेरी रानी'। जैसे मन में कोई उत्साह नहीं है। फिर भी हृदय आल्हादपूर्ण हो रहा था, अंगों में स्फुरण हो रहा था, लेकिन पास में ज्योति के निकट ही ज़ुलेखा को देखकर दिल बैठने लगा। एक बात बताऊँ, कुछ दिन पहिले मैंने इसी लड़की को आँख भर देखा था। यह नहीं मालूम था कि यह लड़की ज्योति की सहेली है। मेरी आँखें कुछ अटक गईं थीं, इस भोली लड़की के सलोने मुखड़े पर। फिर ख़्याल आया, मैं इसे पा न सकूँगा, प्रयत्न करना बेकार होगा। दिल पर दबाव डाला और उसे भूलने की कोशिश की। सवेरे उसे झूले पर देखा। उसकी अध-मुँदी आँखों ने मेरे मन को जैसे मथ डाला। स्नेह नहीं, करुणा से

मेरा दिल भर गया। ऐसा क्यों हुआ सो नहीं कह सकता। लेकिन ऐसा हुआ इसमें कोई सन्देह नहीं। और अभी, जब मेरे विवाह की बातें ठाकुर साहब और तुमसे हो रही थीं, कान से मैं उन बातों को सुन रहा था, लेकिन मेरी आँखें ज़ुलेख़ा पर ही लगी हुई थीं। साथ में ज्योति को देखने पर ज़ुलेख़ा की महत्त। और भी बढ़ गई। सच यूसुफ़! इस समय हृदय में एक द्वन्द चल रहा है। एक बार जी चाहता है लम्बे डग भरता पहुँच चलूँ ज्योति के पास, लेकिन उसी समय जैसे कोई कहता है, 'वहाँ मत जाना, ज़ुलेख़ा का सामना तुम न कर सकोगे। उसकी लाल, सजल आँखें तुम्हारे कलेजे के टुकड़े कर देंगी।"

यशवन्त थोड़ी देर चुप रहा। स्वस्थ होने का प्रयत्न करते हुये फिर बोला, "सोचोगे तुम कि मैं भावुक हो रहा हूँ। ज़ुलेख़ा के प्रति मेरी इस प्रकार की धारणा के लिये तुम्हें पर्याप्त कारण भी नहीं दिखाई देता होगा। दिन भर तर्क-वितर्क करने के बावजूद मैं स्वयं भी इसमें असफल रहा हूँ। लेकिन सच जानो यूसुफ़, हालाँकि ज्योति इस समय मेरी समस्याओं का समाधान बन रही है, लेकिन ज़ुलेख़ा इतनी बड़ी समस्या बनती जा रही है जिसका हल ढूँढ निकालना मेरे लिये असम्भव होता जा रहा है।"

यशवन्त की इस प्रकार की बहँकी बातों का आदी यूसुफ़ बहुत तो नहीं उलझा, लेकिन कुछ परेशान सा होने लगा था। वह इस ख़ूबसूरत और अनोखे मौक़े को यशवन्त की बहँक और बेवकूफ़ी के कारण हाथ से जाने नहीं देना चाहता था। उसने फिर कहा, "जो कुछ तुम कहते हो सब ठीक है यश, लेकिन यह समय खोने का नहीं। चलो, इस समय ज्योति से मिल लें, बाकी बातें बाद में होती रहेंगी।"

यूसुफ़ ने यशवन्त को फिर सबेरे की तरह घसीटना शुरू किया। अनमना होने पर भी यशवन्त को इस प्रकार घसीटा जाना बहुत अधिक बुरा न लगा।

ज्योति ने यह सब देखा। उसने ज़ुलेख़ा को इशारा किया। दोनों के चेहरे खिल उठे। एक व्यापक हँसी हँसती हुई ज्योति ने कहा, "ज़ुली, देख रही है, कैसे घसीटे जा रहे हैं। ऊपर से दिखा रहे हैं कि आना नहीं चाहते, लेकिन मन ही मन ख़ुश हो रहे होंगे।"

"लेकिन जोत, परेशान हो रहे हैं बेचारे। ये युसुफ़ साहब भी क्या आदमी हैं, बस घसीटे डाल रहे हैं।" ज़ुलेख़ा को जैसे यशवन्त की दुर्दशा पर दया आ रही थी। और, युसुफ़ क़दम बढ़ाये, यशवन्त का हाथ पकड़े इन दोनों की ओर बढ़ता ही आ रहा था।

दोनों पास आये और अभिवादन हुआ। अब युसुफ़ की झेंप दूर हो चुकी थी। झूला रुक गया था। ज्योति के बाँई ओर ज़ुलेख़ा सिर झुकाये खड़ी थी। युसुफ़ के बाईं तरफ़ यशवन्त हाथ बाँधे खड़ा था। दोनों जोड़ियाँ आमने-सामने थीं। कौन पहिले बोले!

युसुफ़ ने हिम्मत की, "अपनी भाभी को आदाब बजा लाता हूँ।"

हतप्रभ ज्योति ठगमारी सी खड़ी रह गई। ज़ुलेख़ा अभी भी खड़ी रही वैसी ही अडिग, अडोल! यशवन्त स्तम्भित रह गया, अवाक्! युसुफ़ के ओठों पर, आँखों में एक हल्की सी मुस्कान दौड़ी और दौड़ कर रह गई, विलीन हो गई शायद ओठों और आँखों की कोर में। सन्नाटा छाया रहा बहुत देर तक!

ज्योति आँखें फाड़-फाड़ युसुफ़ की ओर देखती रही। आँखों में आश्चर्य था, स्थिरता थी। ज्योति सब कुछ जानती थी फिर भी अचानक 'भाभी' शब्द के प्रयोग के लिये तैयार न रहने के कारण उसे काट सा मार गया, मानो बिजली लग गई हो। रात की घटनायें याद आईं। उसने अपनी इच्छा ताऊ जी को बता दी थी। फिर ऐसा क्यों? उसका शरीर झनझना उठा, उल्लास अथवा आकस्मिक आनन्द की अनुभूति से नहीं; किसी अनहोनी अघट घटना की आशंका से। उसने युसुफ़ की ओर ध्यान से देखा। यही तो हैं जिन्होंने बचपने में ही, अबोध अवस्था

में ही बचन ले लिया था. 'शादी करोगी ?' 'हाँ करूँगी', किससे ?' 'तुमसे ?' 'सच ?' हाँ, सच !" युसुफ़ भूल गया है। बात भी पुरानी है। लेकिन ज्योति को याद हैं ये अन्तिम शब्द 'सच ? हाँ, सच !' कल की ही तो बातें हैं। शादी एक बार होती है, सौ बार नहीं। ज्योति युसुफ़ की जो है वही रहना चाहती है। 'भाभी' बनना नहीं चाहती। वह आँखें फाड़ फाड़ युसुफ़ की ओर देखती रही।

युसुफ़ सहम गया। हुआ क्या ? उसने कोई ख़ता नहीं की। कोई बेअदबी भी नहीं हुई उससे। फिर, जोत उसे ऐसे, इस तरह क्यों देख रही है ? लेकिन उसकी आँखों में ग़ुस्सा तो है नहीं। फिर वह इस तरह चकपकाई क्यों हुई है ? युसुफ़ सहम गया।

ज़ुलेख़ा का कुछ न पूछो ! पसीने से तर थी। शर्म से नहीं; ग्लानि से गड़ी जा रही थी। सरकार ने जोत को 'भाभी' कहा। यशवन्त की शादी जोत से जो होने वाली थी। उनका कहना ठीक था। जोत उनकी भाभी है क्योंकि वह यश के दोस्त हैं। लेकिन उसके अपने अरमान जो धूल में मिले जा रहे हैं, उसकी अपनी उम्मीदें जो पस्पा हुई जा रही हैं। फिर भी उसे ख़ुश होना चाहिये। लड़कपन की उसकी सहेली के साजन सामने खड़े हैं। मौक़ा ख़ुशी का है। अफ़सोस करना, दुख करना अपनी सहेली के साथ ग़द्दारी करना होगा। नहीं, वह ऐसा नहीं करेगी। ज़ुलेख़ा ने कोशिश की कि वह मुस्कराये, कुछ बोले। लेकिन हुआ इसके उल्टे ही। ओंठ काँप कर रह गये। आँखों में आँसू छलछला आये। वह कुछ बोल न सकी।

येशवन्त नीची आँखों से कभी ज्योति, कभी ज़ुलेख़ा की ओर देखता। कभी कभी युसुफ़ की ओर भी आँखें उघार कर देख लेता। लेकिन कुछ भी कह सकना उसकी शक्ति के बाहर की बात थी। वह संज्ञाहीन सा होने लगा।

युसुफ़ ने फिर पेश क़दमी की, "भाभी, कोई ख़ता हो गई ?"

"नहीं, नहीं, ऐसी भी क्या बात है," शक्ति बटोर ज्योति बोली, "आप यह क्या कह रहे हैं ?"

युसुफ़ की जान में जान आई। ख़ाँस कर, गला साफ़ करते हुये बोला, "मैं सचमुच घबरा गया था। डर गया कि मुझसे कोई ऐसा बहुत बड़ा क़सूर हो गया है जिससे आप सभी चुप हो गईं।"

ज्योति एक सूखी हँसी हँस कर रह गई। उसने जवाब नहीं दिया कुछ।

अब वातावरण हलका हो चला था। यशवन्त भी स्वस्थ होता जा रहा था। ज्योति ने अपने को सँभाल लिया था। लेकिन ज़ुलेख़ा अब भी बेसुध खड़ी थी। उसकी वेदना का, उसके दिल की कसक का पता किसी को न था सेवाय ज्योति के। ज़ुलेख़ा रह रह कर ज्योति की ओर अपनी छलछलाई आँखों से देख लेती। दाहिने पैर का अंगूठा ज़मीन कुरेदने लगता। अप्रतिभ, कान्तिहीन, म्लान-मुख ज़ुलेख़ा की उदास, अवसादपूर्ण मनोदशा का पूरा पता अकेली ज्योति को था। ज्योति ज़ुलेख़ा के दिल की बात जानती समझती थी।

'इन्हें आप पहिचानते हैं ? ये मेरी बहिन ज़ुलेख़ा हैं। दीनमोहम्मद शेख़ की लड़की।" ज्योति ने युसुफ़ को ज़ुलेख़ा का परिचय दिया।

"हाँ हाँ, दीनू शेख़ को कौन नहीं जानता ? वह तो हमारे गाँव के एक रतन हैं। ऐसे बुज़ुर्ग के साये में ही तो गाँव की ज़िन्दगी पलती है। अब्बा के अपने ख़ास लोगों में से थे ये दीनमोहम्मद। दोनों की ख़ूब निभती थी। ज़ुलेख़ा बहिन का नाम तो सुन रखा था। देखने का मौक़ा आज मिला। जैसा बाप वैसी बेटी। इन लोगों के आँखों में कितना पानी है। बाबा को ज़रा भेजना मेरे पास। बहुत दिनों से मुलाक़ात नहीं हुई। कहना, युसुफ़ ने याद किया है।" युसुफ़ ने स्नेह जताते, अपनापन दिखाते हुये ज़ुलेख़ा से कहा।

"जी, अच्छा, कह दूँगी। लेकिन," कहते-कहते ज़ुलेख़ा रुक गई।

"कहो, कहो, क्या बात है?" युसुफ़ ने पूछा।

"अब्बा कह रहे थे कि वह आपकी ख़िदमत में कई बार गये। कुछ ज़रूरी काम था। लेकिन आपके नौकर चाकरों ने उनकी ख़बर आप तक नहीं पहुँचाई। उलटे जा बेजा बकने लगे। अब्बा को बड़ा सदमा हुआ। सिर झुका कर वापस लौट आये। कह रहे थे अब न जाऊँगा सरकार के पास। वहाँ किसी की क़द्र नहीं होती।"

युसुफ़ को धक्का लगा। 'उसके नौकरों की शिकायत स्वयं उसकी शिकायत थी। उसने इन्हें ज़्यादा ढील दे रखी थी। खा खा कर मोटे हो रहे थे सब, लेकिन काम धाम नहीं था। उन लोगों को क्या पता कि बूढ़ा दीनमोहम्मद कौन है, क्या है। सोचा होगा योंही अवाँरु-गवाँरु होगा। क्या जानते हैं ससुरे कि उन फटे चीथड़ों में लिपटा हुआ बूढ़ा हमारा बुज़ुर्ग है।' युसुफ़ को ज़ुलेख़ा की स्पष्ट वादिता पर क्रोध नहीं आया। उसकी नादानी और भोलेपन पर वह रीझ गया। दूसरी कोई चुस्त चालाक लड़की होती तो चिकनी चुपड़ी बातें कर उसे ख़ुश करने की कोशिश करती, लेकिन ज़ुलेख़ा को दुनियादारी आती ही नहीं थी। जो कुछ ज़बान पर आया साफ़-साफ़ कह दिया।

ज्योति को ज़ुलेख़ा का ढंग पसन्द नहीं आया। वह समझती थी युसुफ़ को ज़ुलेख़ा की बातें ज़रूर बुरी लगेंगी। लेकिन युसुफ़ के यह कहने पर कि, "बाबा को फिर भेजना, पुरानी ख़ता की तलाफ़ी कर दी जायगी" उसे ढाढ़स हुआ।

उधर शाम होने वाली थी। दूसरे झूले धीरे-धीरे ख़ाली होते जा रहे थे। भीड़ कम होती जा रही थी। युसुफ़ ने यह देखा, यशवन्त ने भी। ज़्यादा वक़्त खोना बुरा होता यह सोच युसुफ़ ने यशवन्त को छेड़ा, "भाई, तुम भी कुछ बोलो। थोड़ी देर में अँधेरा हो जायेगा तो इन लोगों को भी जाना पड़ेगा।"

"मैं क्या बोलूँ ! मेरी ओर से तुम्हीं सब कुछ कहे दे रहे हो। मेरे बोलने के लिये बचा ही क्या है ?" यशवन्त मुस्कराया।

"उस पार की बातें सोच रहे हैं क्या ?" ज्योति हँसी

"नहीं, सोच तो रहा हूँ इसी पारकी।" यशवन्त ने जवाब दिया।

'आप लोग खड़े कब तक रहेंगे ? बैठ जाइये झूले पर।" ज़ुलेख़ा ने कहा।

"और आप लोग ?" युसुफ़ ने पूछा।

"हम लोगों की बारी तो बीत चुकी है।" ज़ुलेख़ा कह पड़ी।

"या हमेशा के लिये आ रही है ?" यशवन्त बोला।

"सो तो आप जानें।" ज़ुलेख़ा ने फिर कहा।

बात सीधी थी। लेकिन ज्योति को जैसे चेतावनी मिली। वह सँभल गई। उसे अपनी वे बातें याद आईं जो उसने ज़ुलेख़ा से कही थीं। फ़ौरन सजग हो गई। बोली, "ठीक तो कहती है ज़ुलेख़ा, बैठ न जाइये आप लोग।"

"नहीं, यह ठीक नहीं होगा," युसुफ़ ने कहा।

"फिर क्या ठीक होगा ?"

"आज आप और यशवन्त साथ बैठें और हम लोग झुलायें।"

'मैं तो आपके साथ झूलूँगी। सुबह इनके साथ झूल चुकी हूँ।"

"मेरे साथ ?"

"जी, आपके साथ।

'लेकिन यशवन्त को छोड़ आपने मुझे कैसे पसन्द किया ? मैं तो हैरान हूँ।"

"कहानी पुरानी है। बाद में बताई जायेगी।" दृढ़ता से कहा ज्योति ने।

"कहो युसुफ़, ये मामले हैं।" यशवन्त ने फबती कसी। हैरान युसुफ़ कुछ बोल न सका।

"बैठ न जाइये आप दोनों ?" हल निकाला ज़ुलेख़ा ने।

"मेरी बात मानेंगी ?" युसुफ़ ने पूछा।

"कहिये, हुक्म।" ज़ुलेख़ा ने पूछा।

"हुक्म क्या ? तुम इनके साथ झूले पर बैठो। हम दोनों झुलायेंगे। बहुत अच्छा लगेगा।" ज्योति ने ज़ुलेख़ा की ओर मर्मभरी निगाह से देखा।

यशवन्त कुछ कह पाये इसके पहिले ही युसुफ़ ने उसे झूले पर बिठा दिया। ज़ुलेख़ा के साथ भी ज़बरदस्ती की गई। ज्योति ने उसे यशवन्त के बाईं ओर बिठा दिया। दो क़दम पीछे हट दोनों को ग़ौर से देख, शरारत भरी मुस्कराहट के साथ ज्योति ने कहा, "कितनी अच्छी जोड़ी है!" समर्थन पाने के लिये ज्योति ने युसुफ़ की ओर देखा।

"क्या कहना है!" उत्फुल्ल हृदय युसुफ़ ने कहा।

"और वह जोड़ी ?" ज़ुलेख़ा ने दबी ज़बान से कहा।

"क्या कहना है!" युसुफ़ ने दोहरा दिया।

ज्योति का चेहरा खिल उठा जैसे कोई मुराद मिली हो, कोई अरमान पूरा हुआ हो। उसकी सतृष्णा, सजल आँखें युसुफ़ की ओर आग्रह पूर्वक देखने लगीं। स्नेह-सिक्त नज़रों से युसुफ़ ने ज्योति को देखा। किसी मंगलमयी, रोमाञ्चकारी भावना से उसका दिल भर गया, गला रुँध गया। अपने को रोक न सका तो युसुफ़ ने ज्योति के कंधे पर हाथ रख कर फिर "भाभी, मेरी," कह दिया।

ज्योति का मुँह पीला पड़ गया। जैसे दिल पर किसी ने एकाएक बड़े ज़ोर का घूँसा मार दिया हो। अप्रत्याशित चोट का असर गहरा होता है। मर्मान्तक पीड़ा से आहत ज्योतिर्मयी के गुलाबी कपोल पीले पड़ गये, आँखों के आगे अँधेरा छा गया, विवर्ण मुख और

कान्ति विहीन आकृतियों की लुटी तसवीर सी ज्योति ज्यों की त्यों खड़ी रह गई।

ज़ुलेख़ा सब कुछ समझ रही थी। लेकिन उसके शरीर के अंगों की शिथिलता और भीतर की उथल-पुथल ने उसे किंकर्तव्य विमूढ़ बना दिया था। अभी अभी क्षण भर पहिले वह आनन्द सागर में हिलोरें ले रही थी। पल भर की इस आनन्दानुभूति ने उसे विभोर कर दिया था। इसी समय युसुफ़ का 'भाभी' कहना, ज्योति के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ना और ज़ुलेख़ा का जीवन की इस कठोर सचाई के शिला खण्ड से टकरा जाना, सब कुछ एक दो क्षणों में ही हो गया।

यशवन्त और युसुफ़ दोनों कुछ न समझ सके। उन्हें क्या पता था कि इस ज़रासी हँसी मज़ाक़ के पीछे बहुत बड़ी बड़ी बातें छिपी हैं। साधारण से आमोद प्रमोद के पर्दे में दो नारी हृदयों के भविष्य की कल्पनायें, कामनायें, आकाँक्षायें छिपी हैं इसका उन्हें ज़रा भी अन्दाज़ न था, इसलिये ज्योति की आकस्मिक विवर्णता का भी उन्हें अनुभव न हुआ। युसुफ़ ने कुछ भाँप भी लिया तो यही समझा कि अभी झेंप रही हैं।

ज़ुलेख़ा ने थोड़ी देर तक सोचा, फिर बोली, "जोत चलो, घर चलें। अब देर हो रही है। देखो, सारा बाग़ धीरे धीरे ख़ाली हो चला।"

ज्योति ने ज़ुलेख़ा की ओर आँखें गड़ा कर देखा, कुछ सहमी और फिर कहने लगी, "चलती हूँ ज़ुली! ज़रा देर और रुक जाने दे।" कुछ रुक कर ज्योति ने फिर कहा, "लाल साहब, आप से कुछ कहना है। आप तो क्षत्रिय हैं। बचन के पक्के होंगे हा। अगर आप वायदा करें कि आप बुरा न मानेंगे और मैं आगे जो कुछ कहूँगी उसका ग़लत अर्थ न निकालेंगे तो मैं कुछ कहूँ।"

यशवन्त को आशा नहीं थी कि ज्योति इस प्रकार उससे बातें करेगी। अचम्भे में पड़ गया। फिर सँभल कर कहा, "हाँ, हाँ, कहिये! आप को किसी भी प्रकार की आशंका नहीं होनी चाहिये। आप ऐसा कहेंगी ही क्या जो मुझे बुरा लगेगा। आप की बात मुझे बुरी लग ही नहीं सकती।"

"गुस्ताख़ी माफ़ हो तो मैं आप से भी कुछ कहूं।" ज्योति ने युसुफ़ की ओर भी देखा।

"कहिये, आप इतना संकोच क्यों करती हैं?" युसुफ़ ने तपाक से जवाब दिया।

एक क्षण सन्नाटा रहा।

"लाल यशवन्तसिंह को ज़ुलेख़ा से ब्याह करना चाहिये। मेरी शादी आपसे होगी।" कहते कहते ज्योति का सिर घूमने लगा। वह लड़खड़ा कर गिरा ही चाहती थी कि युसुफ़ ने उसे थाम लिया। मूर्छित ज्योति का सिर युसुफ़ के सीने पर लुढ़क गया।

इस अघट घटना की आशंका ज़ुलेख़ा के सिवाय और किसी को न थी। हड़बड़ा कर वह उठी, झपट कर उसने ज्योति को अपने आँक में ले लिया और उसे झूले पर लिटा कर आँचल से हवा करने लगी।

यशवन्त ने युसुफ़ की ओर देखा। वह विक्षिप्त हो रहा था। झूले से फ़ौरन उठ कर दाड़ पड़ने के बावजूद भी वह ज्योति का शरीर छू न सका। दो क़दम दूर खड़ा वह कनखियों से रह रह ज्योति को देख लेता। युसुफ़ का सहारा वह चाहता था। अपने ऊपर उसे भरोसा न था। और जब युसुफ़ ने उसके कन्धे पर हाथ रखा तो पता चला यशवन्त की साँस ज़ोरों से चल रही है। युसुफ़ ने यशवन्त को अपने पास घसीट छाती से लगा लिया। यशवन्त का कलेजा जोरों से धड़क रहा था।

प्यार से सिर और गालों पर हाथ फेरते हुये युसुफ़ ने कहा, "यश, यह मौक़ा घबड़ाने का नहीं है। इन्सान की परख ऐसे ही मौक़ों पर होती है। तुम्हारे घबड़ाने से इन लोगों की हालत और भी ख़राब हो जायगी। होश संभालो, तबीयत ठीक रक्खो।"

सामने ज़ुलेख़ा अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से अपनी सारी ममता, सारा स्नेह उँड़ेलती हुई अपने आँचल से ज्योति के सिर पर हवा कर रही थी। जैसे निराशा की चोट से धराशायी भावुक कल्पना को नया जीवन प्रदान कर रही हो, हलके-हलके सहारा दे पुनर्जीवित कर रही हो।

यशवन्त की आँखों से आँसू उमड़ आये, ग्लानि के, पीड़ा के, विक्षिप्तता के! युसुफ़ का सहारा न होता तो गहरी चोट खाये हुये घायल प्राणी की भाँति वह भी करुण चीत्कार करने लगता। आँसुओं को घोंटने का प्रयत्न करते हुये यशवन्त ने पूछा, "युसुफ़ भाई, अब!"

"ठहरो, ऐसे सवालों का यह वक़्त नहीं है। देखो, ज्योति की आँखें खुल रही हैं।" युसुफ़ की आँखें ज्योति की ओर लगी हुई थीं। जैसे-जैसे उसके होश में आने के चिह्न स्पष्ट और सपष्टतर होते जाते उसके चेहरे का भी रंग बदलता जाता। ख़ुशी की रेखायें दौड़ने लगतीं।

कुछ क्षण और बीते!

ज्योति की आँख खुली तो उसने देखा पास ही यशवन्त और युसुफ़ चिन्तित हो उसकी ओर देख रहे हैं। ज़ुलेख़ा हवा कर रही है। वह सारी परिस्थिति समझ गई। धीरे-धीरे उसके दाहिने हाथ की पतली उँगली उठी। यशवन्त और युसुफ़ और नज़दीक आ गये। ज्योति ने कमज़ोर पतली आवाज़ में कहा, "आप लोगों से मैंने पहिले ही क्षमा माँग ली थी। मुझे दुःख है, आपको मेरी वजह से कष्ट हुआ। लाल साहब को गहरा धक्का लगा होगा। मुझे इसका पता है। लेकिन आप लोग मर्द हैं। आपका कलेजा मज़बूत होता है। आप हम औरतों से ज़्यादा बर्दाश्त कर सकते हैं। मैंने जो कुछ कहा

उसे आप समझ गये होंगे। मोहब्बत कहने की नहीं होने की चीज़ है। ज़ुलेख़ा अपना दिल आपको दे चुकी है। उसके रास्ते में मैं रोड़ा बनना नहीं चाहती। उसकी शादी आपके साथ होनी चाहिये। आप क्षत्रिय हैं। आपको यही शोभा देती है कि आप ज़ुलेख़ा जैसी शीलवती, गुणवती, प्रेम की प्रतिमा के इस आत्मदान को स्वीकार करें। वह आपकी हो चुकी है, उसे आप अस्वीकार नहीं कर सकते। मेरा भविष्य तो आज दस बरस पहिले ही निश्चय हो चुका था। आप शायद भूल गये होंगे," युसुफ़ की ओर देख ज्योति ने कहा, "खेल-खेल में आपने पूछा था इसी बाग़ में, 'मुझसे ब्याह करोगी' और मैंने भी सरलता से 'हाँ' कह दिया था। अब वह समय आगया है जब आपको और मुझको अपनी पुरानी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये। मैंने अपना निश्चय आपको बता दिया। अब आपकी बारी है।"

युसुफ़ ने यशवन्त और ज़ुलेख़ा की ओर देखा। सँभल कर बोला, "इसका असर क्या होगा? घर के लोग क्या कहेंगे?"

"इसकी पर्वाह तो हम लड़कियों को होना चाहिये। आप तो मर्द हैं, चाहे जितनी शादियाँ कर लें। चाहे जिससे कर लें। आपके ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं। आपका विरोध कोई नहीं कर सकता। विरोध तो हमारा होगा। प्रताड़ित, अपमानित भी हमें ही होना पड़ेगा। लेकिन हम इन सब यातानाओं के लिये तैयार हैं। आप 'हाँ' कह दें, आपका सहारा मिल जाय तो हम घर वालों और समाज के विरोधों का मुक़ाबिला कर लेंगी। इस समय आप दोनों के हाथों में दो निरीह, परवश, अबलाओं का जीवन है। आपके उत्तर पर हमारी साँसें टँगी हुई हैं। बोलिये लाल साहब! और आप बोलिये!"

ज्योति की सतेज आँखों से लपटें निकलने लगीं, जिसकी प्रखर आँच में अनिश्चय, असमजंस की पोपली खाल झुलस गई।

युसुफ़ ने यशवन्त की ओर देख कर कहा, "बोलो यश, क्या कहते हो?"

"अब भी कुछ कहना बाक़ी है। ज्योतिर्मयी जो कहती हैं वही होगा।" यशवन्त की छाती गर्व से फूल गई। "ज्योति, यह क्षत्रिय पुत्र की प्रतिज्ञा है। ज़ुलेख़ा मेरी हो चुकी और युसुफ़ तुम्हारा। संसार की कोई शक्ति हमारे इस संयोग में व्याघात नहीं पहुंचा सकती। विश्वास रखो, विरोधों का सफलता पूर्वक सामना करने की क्षमता और शक्ति हममें है।"

युसुफ़ ने यशवन्त को गले से लगा लिया। "यश, प्रतिज्ञा बड़ी है। लेकिन हम इसे पूरी करेंगे।" युसुफ़ ने विश्वास दिलाया।

ज़ुलेख़ा फफक-फफक कर रो रही थी। आज अभी उसकी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा अरमान पूरा हुआ था। लेकिन कैसे? किस क़ीमत पर! कितनी बड़ी क़ीमत पर! उसके लिये ज्योति ने कितनी बड़ी क़ुर्बानी की थी! कितना बड़ा त्याग किया था!

"ज़ूली, यह क्या हो रहा है? तू रो रही है? पगली। मैंने कहा था न यशवन्त सिंह ऐसे-वैसे आदमी नहीं हैं।"

"भाई साहब!" युसुफ़ का हाथ अपनी ओर खींच ज़ुलेख़ा ने चूम लिया, "बहुत बड़ी क़सम खा ली है आप लोगों ने।"

"देर हो रही है। अँधेरा हो चला है। अब तुम लोगों को घर जाना चाहिये।" युसुफ़ ने ज़ुलेख़ा से कहा। वह इस मानसिक दशा और वातावरण के बोझ से घबरा रहा था।

ज़ुलेख़ा उठ खड़ी हुई। ज्योति ने भी अपनी साड़ी सँभाली। युसुफ़ और यशवन्त जाते समय विदा लेने लगे तो उन दोनों की पलकें भीग रही थीं। ज़ुलेख़ा का सिर ज्योति के कन्धे पर था। ज्योति का दाहिना हाथ ज़ुलेख़ा को अंक में दबाये हुये था।

अँधेरा गाढ़ा होता जा रहा था।

—:०:—

# ४

युसुफ़ जाह बहादुर का दरबार आज सजा हुआ था। आस पास के ठाकुर, जागीरदार जमा थे और सवाल उठ खड़ा हुआ था मान-मर्यादा का। वह ठाकुर भी क्या जो पानीदार न हो! मानमर्यादा न रही, नाक ही कट गई तो जीने से लाभ? घरों की शान होती हैं लड़कियाँ। वही जातीं हैं पराये घर और अपनी बातचीत, व्यवहार कुशलता से अपने कुल की नाक ऊपर रखती हैं। अगर कुलांगार हुईं तो अपने पितरों तक को नर्क में ढकेल देती हैं।

ठाकुर भगवानसिंह जागीदार की गर्दन इस समय नीची हो गई थी। उनकी लड़की ने अपने हठ और दुर्बुद्धि से उनकी मर्यादा मिट्टी में मिला दी थी, उन्हें कहीं का नहीं रखा था। सिर नीचा किये एक ओर उदास बैठे थे।

लाल कुलकरनसिंह की त्योरियाँ चढ़ी हुई थीं। अपनी अधपकी मूँछें बार-बार टेते और घूर-घूर कर ठाकुर भगवानसिंह की ओर देख लेते। दरबार में जितने सरदार आये थे उनमें से अधिकतर लाल साहब के पक्ष में थे। आपस में निपटारा न हो सका और किसी भी प्रकार जब ज्योति तैयार न हो सकी तो मानहानि की क़सर निकालने के लिए लाल साहब ने सरकार से फ़ैसला कराना चाहा। लाल साहब को पूरी आशा थी कि सरकार का फ़ैसला उनके पक्ष में होगा। 'वह पक्षपात क्यों करेंगे? उनको किसी से क्या लेना देना? फिर यशवन्त के भी गहरे दोस्त थे।' लाल साहब ने सोचा था।

भगवान सिंह अपनी लड़की से हार चुके थे। ऐसी ज़िद्दी थी कि लाख कहने-सुनने झिड़कने के बावजूद भी टस से मस न हुई। तीन दिन हो गये न खाती है, न पीती हैं। कोठरी में पड़ी रोती रहती है। दरबार में भी उनका पानी उतरने वाला है। उन्हें अपनी लड़की पर नियन्त्रण रखना चाहिये था। अगर ऐसा नहीं था तो उन्हें विवाह की बात ही आगे नहीं बढ़ानी चाहिये थी। जब यशवन्त के पिता ने कह दिया और स्नेही सम्बन्धियों को पता चल गया, तब विवाह से उन्हें इनकार नहीं करना चाहिये था। लड़की वाले भी कहीं इनकार करते हैं! विवाह से इनकार करके उन्होंने सारे लाल कुटुम्ब की इज्जत मिट्टी में मिला दी।

यों देखने में बात बहुत साधारण थी। कोई संगीन मामला न था। चाहते तो चुपके से सब कुछ रफ़ादफ़ा कर दिया जाता। लेकिन लाल साहब चाहते थे कि युसुफ़ जाह बहादुर भी दख़ल दें और उचित फ़ैसला करें। मन में वह यह भी सोचते थे कि शायद इनके दख़ल देने से ज्योतिर्मयी पर अधिक दबाव पड़े और वह राज़ी हो जाय। बात यह थी कि लड़की स्वयं उनको बहुत पसन्द थी और एक तरह से उन्होंने ही पेशक़दमी भी की थी। जब ज्योतिर्मयी ने इन्कार कर दिया तो उनको बहुत गहरा धक्का लगा और वे अपमान और क्रोध के मारे तिलमिला उठे। सब ले दे के ठाकुर भगवानसिंह ही पर सारी ज़िम्मेदारी आती थी।

युसुफ़ जाह के दिल में चोर था। उस दिन की घटना उन्हें याद थी। बहुत हद तक उनकी और ख़ुद यशवन्त की ज़िम्मेदारी भी थी। लेकिन ज्योतिर्मयी ने सब बातें गुप्त रखी थीं और साफ़ कह दिया था कि उसका ब्याह यशवन्त से न होगा। दरबार में एक ओर यशवन्त उदासीन सा बैठा हुआ था। उसकी आँखें कभी-कभी जब युसुफ़ से

मिल जातीं तो वह दूसरी ओर देखने लगता। वह मन में अपने पिता की झूठी अँकड़ और मिथ्याभिमान पर हँस भी रहा था।

अन्त में गंभीर मुद्रा बना युसुफ़ जाह बहादुर ने कहना शुरू किया, "सरदारो और जागीरदारो! आप मेरे पास फ़ैसला कराने आये हैं। लेकिन उम्र और तजरबे दोनों में आप से कम और छोटे होने की वजह से मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि मैं क्या कहूँ? वालिद बुज़ुर्ग का ज़माना होता तो दूसरी बात थी। मैं आप लोगों से यही प्रार्थना करूँगा कि आप लोग आपस में सुलह कर लें और किसी तरह आपस का मन मुटाव ख़त्म कर दें। इतनी छोटी बात के ऊपर आप लोगों का आपस में झगड़ना कुछ अच्छा नहीं लगता। इससे न आपका नाम बढ़ेगा न गाँव की बहबूदी होगी। अगर झगड़ा बढ़ गया तो नुक़सान बहुत बड़ा हो सकता है। शायद आप लोगों को अच्छी तरह पता है कि गाँव ही नहीं सारे मुल्क पर बहुत बड़ी आफ़त आ रही है। मेरा इशारा कम्पनी से लोगों की बेज़ारी और खफ़गी और दूसरे रियासतों और फ़ौजों में बदगुमानी और बदअमनी की ओर है। पुआल में चिनगारी पड़ चुकी है। कब आग लग जाय कोई कह नहीं सकता। क्या हमें इस ख़तरनाक मौक़े पर आपसी भेद भाव को मिटाकर एक नहीं हो जाना चाहिये? मैं आप बुज़ुर्गों से यही कहना चाहता हूँ कि आप यह झगड़ा ख़त्म कर दें और लाल यशवन्तसिंह की शादी कहीं और कर दें। लाल यशवन्तसिंह जैसा जवान आस-पास के दस बीस गाँवों में नहीं है। कौन ऐसा है जो अपनी लड़की इनके साथ ब्याहना नहीं चाहेगा?"

"मगर हुज़ूर!" उठकर खड़े हो लाल कुलवन्तसिंह ने कहा, "सवाल यह नहीं है। सवाल हमारे मान अपमान का है। आप जानते हैं कि हम राजपूतों के पास मान इज़्ज़त के अलावा और कुछ नहीं है। हम अपनी शान पर जान देना जानते हैं। अगर ठाकुर भगवान

सिंह को मेरी इज्जत का ख़याल होता तो ये कभी ऐसा काम न करते। हम क्षत्रियों की नसों में बहुत गर्म ख़ून बहता है। तलवार हमारी कमर में लटकती म्यान से बाहर आने के लिये मचलती रहती है। सिर हथेली पर धरकर चलना हम जानते हैं। इन्होंने मेरी बेईज़्ज़ती की। मेरे लड़के के नाम पर धब्बा लगाया। इन्हें हम क्षमा नहीं कर सकते। हम अब भी कहते हैं कि अगर ये इस हालत में भी अपनी लड़की की शादी यशवन्त से कर दें तो हम चुप हो बैठ जायेंगे। ऐसा न हुआ तो हुजूर के सामने मैं कह देना चाहता हूँ कि इनकी लड़की हमारी हो चुकी है और उसे ज़बरदस्ती भी हम अपने घर बुला सकते हैं। इस काम के लिये हम ख़ून बहा सकते हैं, सिर भी दे सकते हैं।"

दरबार का वातावरण गर्म हो गया। लाल साहब के चुनौती भरे शब्दों ने सबको बहुत गंभीर बना दिया। सभी एक दूसरे का मुँह देखने लगे। बहुतों की निगाहें ठाकुर भगवान सिंह की ओर घूमीं तो वह खड़े हुये। घबराहट और आवेश से वह काँप रहे थे। लेकिन अपने को सँभालते हुये बोले, "लालसाहब की चुनौती आप लोगों ने सुन ली। वह मुझे स्वीकार है। लालसाहब और उनके साथियों का स्वागत करने के लिये हम तैयार हैं। पहिले फूलों के हार आपके गले में पड़ते। अब लोहे की चमकती तलवारें आपकी गर्दनों में पड़ेंगी। हम रोटी-बेटी का व्यवहार करना जानते हैं और मैदान में जूझना भी। अपनी ओर से मैं यह झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहता। मैंने लाल साहब से कई बार हाथ जोड़कर विनती की कि मेरी लड़की की ना समझी के लिये मुझे क्षमा कर दें। मैं सरकार और आप सब सरदारों के सामने यह मानने के लिये तैयार हूँ कि मैं अपनी बेटी के दोषों के लिये जिम्मेदार हूँ। अगर आप सोचते हैं कि उसके शादी से इनकार करने से लाल साहब की मानहानि हुई है तो आप मेरे ऊपर जो जुर्माना चाहें लगा दें। जिस तरह भी लाल साहब सन्तुष्ट हों मैं तैयार हूँ।

लेकिन आप याद रखें कि मैं उस लड़की का पिता हूँ और उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे जीवन भर के लिये बलिदान नहीं कर सकता। मेरी बेटी अगर शुरू में ही मुझसे कह देती तो, विश्वास मानिये, मैं कभी भी इस बात को आगे नहीं बढ़ाता। इधर कुछ दिनों से वह ज़रूर लुके-छिपे एतराज़ किया करती थी, मगर मैंने ध्यान नहीं दिया, यही मेरी ग़लती थी। मैं फिर आप सरदारों और सरकार का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूँ कि जिन दो ख़ानदानों में इतने दिनों से एकता रह आई है और कभी भी अनबन नहीं हुई, उनमें अब इस छोटी सी बात को लेकर नाहक बिगाड़ होने वाली है। अगर इस आने वाली दुर्घटना से आप हमें बचाना चाहते हैं तो आप कृपा करके हमें रास्ता सुझावें। यह सब मैं कायरतावश नहीं कह रहा हूँ। मुझे इन दो घरानों के पुराने रिश्ते प्रिय हैं, और साथ ही हुज़ूर सरकार ने जिस बात की ओर ध्यान दिलाया है उधर भी मेरी निगाह है।"

ठाकुर भगवानसिंह बैठे तो सन्नाटा छा गया था। लाल साहब परिस्थित का अध्ययन करते रहे। दूसरे सरदार भी अब अधिक गंभीर थे। युसुफ़ साहब की ओर भी लोगों की आँखें उठतीं। वह सिर नीचा किये ध्यान से ठाकुर भगवानसिंह की बातें सुनते रहे। जब ठाकुर साहब चुप हो बैठ गये तो उन्होंने औरों की ओर देखा।

बूढ़े रामउजागरसिंह ने पूछा, "क्या हम यह जान सकते हैं कि ठाकुर साहब की सुपुत्री ने क्यों इस सम्बन्ध से इन्कार किया?"

"यह मैं स्वयं नहीं जानता," ठाकुर साहब ने कहा, "मैंने लाख पता लगाने की कोशिश की लेकिन वह यही कहती रही है कि लाल यशवन्तसिंह सर्वगुण सम्पन्न हैं। उनमें बुराई अथवा कमी खोजने की कोशिश मूर्खता है। फिर भी वह शादी के लिये तैयार नहीं है।"

"ठाकुर साहब, आपकी यह बात कुछ जँची नहीं।" एक सरदार ने कहा।

"जो सच्ची बात थी, आपसे बता दी। आपको नहीं जँची यह मेरा दुर्भाग्य है।" ठाकुर साहब ने इस सरदार को योंही चुप कर दिया।

"लेकिन, ठाकुर साहब! आपके इस उत्तर से मूल समस्या पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। मसले का यह कोई हल नहीं है। सवाल का यह कोई जवाब नहीं है। अगर जैसा आप कहते हैं और जैसा आपकी सौभाग्यवती कन्या का कहना है कि लाल यशवन्त सिंह में कोई बुराई या कमी नहीं है तो फिर उसने विवाह से क्यों इन्कार किया? जब तक इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता, हम क्या राय दे सकते हैं? आप यह तो आसानी से समझ सकते हैं कि अकारण पूर्व निश्चित विवाह सम्बन्ध से इन्कार करने पर वर पक्षवालों के प्रति लोगों की ग़लत धारणायें भी बन सकती हैं। और अगर इसलिये लाल कुलवन्त सिंह क्षोभ करते हैं तो अधिक अनुचित नहीं है। मेरा कहना यह है कि अगर कोई ऐसी बात हो तो आपको साफ़ साफ़ कह देना चाहिये जिससे कोई न कोई समझौते का रास्ता निकल सके।"

ठाकुर भगवान सिंह के पास कोई उत्तर न था। लाल साहब ने खड़े होकर कहा, "यही तो मैंने भी बार बार कहा। या तो ये इन्कार करने का कारण बतायें, अगर ऐसा नहीं कर सकते तो चुपचाप यशवन्त का विवाह अपनी सुपुत्री के साथ कर दें। अगर दोनों में से एक भी नहीं करना चाहते तो हमारा रास्ता साफ़ है।"

"लाल साहब! आप ख़ुद समझौते का कोई रास्ता क्यों नहीं निकालते?" युसुफ़ जाह बहादुर ने पूछा।

"मैंने तो साफ़ कहा हुजूर! अब आप मुझसे क्या चाहते हैं? आप ही फ़र्मायें।" लाल साहब ने जवाब दिया।

"जैसा मैंने अभी आपसे अर्ज़ किया था यह मामला बहुत अहम नहीं है। अगर ठाकुर साहब कुछ नहीं कह पा रहे हैं तो आपही चुप हो जाइये। क्या रखा है इन छोटी छोटी बातों में।" सरकार ने फिर दोहराया।

"नहीं हुज़ूर। ऐसा नहीं हो सकता। हम सरकार के पास इन्साफ़ के लिये आये हैं। हमें इन्साफ़ मिले। ऐसा कह के आप ठाकुर साहब का साथ दे रहे हैं। मेरे साथ न्याय नहीं हो रहा है।" ढिठाई और दृढ़ता से लाल साहब ने कहा।

"लाल यशवन्त सिंह तो कुछ नहीं कहना चाहते?" बूढ़े राम-उजागर सिंह ने यशवन्त की ओर देखा।

"उससे पूछने जाँचने की क्या ज़रूरत है? जब मैं यहाँ बैठा हूँ तो यह कैसे बोल सकता है? आप इतने वृद्ध होकर भी ऐसी बातें करते हैं।" एतराज़ किया लाल साहब ने।

अब क्या हो? सभी चुप हो रहे।

"तो क्या हुक्म होता है पंच का?" कुछ देर तक इन्तज़ार करने पर ठाकुर भगवान सिंह ने पूछा। उन्होंने एक एक कर सभी सरदारों और जागीरदारों की ओर विनम्र दृष्टि से देखा। बैठने लगे तो युसुफ़ और यशवन्त को ओर भी आशा भरी आँखों से देख लिया। युसुफ़ का चित्त चंचल हो उठा। एक बार सोचा उठ कर बाग़ वाली सारी घटना सब सरदारों और जागीरदारों को सुना दें। फिर ख़्याल आया कि ऐसा करना ज्योति के हक़ में बुरा हो सकता है, सरदारों के दिलों में उसके प्रति बदगुमानी पैदा हो सकती है, ज़ुलेख़ा और दीनमोहम्मद पर भी आफ़त आ सकती है। युसुफ़, चुप रहना ही ठीक समझ, यशवन्त की ओर देखने लगा।

यशवन्त अब भी बैठा मुस्करा रहा था। उसके चेहरे से लापरवाही टपक रही थी, जैसे जो कुछ हो रहा है सब मूर्खता है, होने वाली बातें तो कब की हो चुकीं। आगे की न सोच पीछे की बातें सोचने वाले मूर्ख नहीं हैं तो और क्या हैं? अगर कहीं इन बूढ़ों को हमारी करनी का पता चल जाय तब क्या करेंगे? तब तो न पिता जी की राजपूती शान रह जायेगी न ठाकुर साहब को तलवारें चमकाने की ज़रूरत। 'कह न

दूँ इनसे सारी बातें अभी यहीं खड़े होकर ?' यशवन्त ने सोचा। लेकिन वह टाल गया।

उधर मामला सुलझता ही न था। किसी सरदार ने फिर उठकर कहा, "अगर आप लोगों को कोई समझौता नहीं करना है तो सभा बरख़ास्त कीजिये। आख़िर हम लोगों का समय क्यों नष्ट कर रहे हैं ?"

युसुफ़ ने सोचा अब कुछ न कुछ करना ही चाहिये। उसने लाल साहब की ओर देखकर कहा, "मेरी राय आप मानें तो मैं कुछ अर्ज़ करूँ ? मैं कोई ऐसी बात नहीं कहूँगा जिससे आप लोगों की इज़्ज़त में बट्टा लगे। हाँ, मुझे यक़ीन है कि उससे कोई न कोई हल ज़रूर निकल आयेगा।"

लाल साहब ने कहा, "हुज़ूर फ़र्मायें मैं कब बाहर हूँ ?"

'मेरी राय यह है कि सारी बातों की पूरी इत्तला कुमारी ज्योतिर्मयी को दी जाय। उनसे यह भी बताया जाय कि अगर वह हमारी बातों को न मानेंगी और अपने मन की करेंगी तो दोनों घरानों का आपसी रिश्ता ख़राब हो जायेगा, गाँव का सदा से चला आया एका टूट जायेगा और आजकल के जमाने को देखते हुये इसका अंजाम बहुत बुरा होगा। उनसे साफ़ कहा जाय कि अपनी ज़िद और हठ धर्मी के कारण वह मेहरबानी करके गाँव भर की ज़िन्दगी ख़तरे में न डालें।" युसुफ़ का चेहरा गम्भीर था, शब्द नपे तुले थे।

"लेकिन मुझे आपके सुझाव से एतराज़ है। किसी भी शरीफ़ लड़की से अगर ऐसी बातें कहीं जायेंगी तो उसके ऊपर क्या असर पड़ेगा, इसे आप सोच लीजिये। जिस लड़की में थोड़ा सा आत्म सम्मान होगा, जो अपनी ज़िम्मेदारियों का अनुभव करती होगी, वह कभी अपने कारण सारे गाँव वालों की ज़िन्दगी ख़तरे में नहीं डालेगी। चाहे जैसे हो, जिस क़ीमत पर भी हो वह यही कहेगी कि मैं विवाह के लिये तैयार हूँ। लेकिन ऐसे ज़बर्दस्ती के विवाह का नतीजा क्या होगा, यह भी आप सोच लीजिये। सम्भव है इससे आप में से कुछ लोगों को अपने

मिथ्याभिमान और प्रवंचना को तुष्टि प्राप्त हो जाय लेकिन उस लड़की का जीवन नष्ट हो जायेगा। दाम्पत्य जीवन का सुख उसे कदापि न मिलेगा। और मेरा क्या होगा इसे आप अच्छी तरह समझ सकते हैं। निवेदन है कि आप लोग स्वार्थान्ध हो, मिथ्याभिमान और प्रवंचना के वशीभूत हो, ऐसा क़दम न उठायें जिससे एक अबोध, निर्दोष कन्या का जीवन नष्ट हो जाये और मैं आप के इस कृत्य के कुफल का बोझ जीवन भर ढोता रह जाऊँ।

"मैं अभी तक चुप था। भरे दरबार में जहाँ अपने गुरु जन उपस्थित हों, बढ़ चढ़ कर बोलना नीति विरुद्ध है, परम्परा के प्रतिकूल है। फिर भी आपद्धर्म समझ कर मैंने अपने दिल की बात आप के सामने रख दी। आप की प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य है। परन्तु आपसे मैंने जो प्रार्थना की है आप उसका भी ध्यान रखें और कोई ऐसा क़दम न उठायें जिससे हमेशा के लिये हम दुख और अपमान में डूबे रहें और आपको भी अफ़सोस हो।" यशवन्त ने दृढ़ता से कहा।

यशवन्त की दो टूक बातों से सन्नाटा छा गया। लाल साहब की गर्दन झुक गई, जैसे उनके मुँह में उनके लड़के ने ही थप्पड़ मार दी हो। ठाकुर साहब हर्ष से पुलकित हो उठे। यशवन्त ने उनके मुँह की लाली रख ली थी। उसने जो कुछ कहा वह उसी के योग्य था। सारा गाँव यशवन्त को पहिले से ही जानता था। इस समय, इस अवसर पर ऐसी बात कही जिससे न्याय प्रिय सरदारों को बड़ी ख़ुशी हुई। बूढ़े राम उजागर सिंह ने शाबासी देते हुये कहा, 'लाल यशवन्त सिंह से इसी न्याय-प्रियता की आशा थी हमें। पुरुषों की नेक नामी बदनामी कैसी? रूप हो, शरीर हो, धन हो, कुल हो तो उसे एक हज़ार लड़कियाँ विवाह के लिये मिल सकती हैं। लेकिग अगर कन्या की बदनामी हो गई तो उसका बेड़ा ग़र्क़ ही समझो। लाल यशवन्त सिंह ने इस बात को समझा और त्याग करके, अपमान सहकर भी

न्यायोचित बात कहीं। हम इसके लिये लाल यशवन्त सिंह के कृतज्ञ हैं और उन्हें धन्यवाद देते हैं। उनके इस कथन के बाद हमें आशा है लाल साहब अपनी माँग आगे नहीं बढ़ावेंगे और आपसी मनमुटाव समाप्त हो जायेगा। जिसका सुपुत्र इतनाउदार चेता हो सकता है उस पिता का क्या कहना ? हम लाल साहब से यही बिनती करते हैं।"

लाल साहब गर्दन झुकाये अब भी वैसे ही बैठे थे। उनके माथे पर पसीने की बूँदे झलक रही थीं। अपना ही बेटा इस प्रकार अपने विरुद्ध हो जायेगा और अपनी नाक कटवा देगा, इसकी आशंका उन्हें नहीं थी। लेकिन अब तो ऐसा हो चुका था। अब क्या हो सकता था ?

युसुफ़ जाह बहादुर ने कहा, "सरदारो, लाल यशवन्तसिंह की बातें आपने सुनी। उन्होंने जिस दरियादिली और नेकनीयती से इस समय काम लिया है वह क़ाबिले तारीफ़ है। उसपर किसी भी आदमी को फ़ख्र हो सकता है। मुझे उम्मेद हे कि लाल कुलवन्त सिंह अब अपनी माँग वापस कर लेंगे और हम लोग ख़ुशी ख़ुशी यहाँ से वापस लौटेंगे।"

"मैं अपनी माँग वापस नहीं लेता। मेरा अपमान हुआ है। उसका बदला मिलना चाहिये। मैं अपनी माँग पर अब भी दृढ़ हूँ।"

"मगर पिता जी, शादी मेरी हो रही थी। अगर अपमान की सबसे गहरी चोट किसी को लगनी चाहिये थी तो मुझे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे बिल्कुल दुख नहीं हुआ, किंचित मात्र भी अपमान की ग्लानि मुझे नहीं है। आप व्यर्थ की बातों में अपने को और साथ ही मुझे भी ज़लील कर रहे हैं···"

"यशवन्त ! होश सँभाल के बातें कर। तू मेरा पानी उतार रहा है। ठाकुर भगवान सिंह का पक्ष लेकर इस समय तू मुझे कहीं का

नहीं छोड़ रहा है। इसका नतीजा क्या होगा ?" लाल साहब आपे से बाहर हो रहे थे।

"कुछ भी हो नतीजा। यह दरबार है। यहाँ न्याय की ही बातें कही जानी चाहियें। सोचिये, ज्योतिर्मयी आप ही की कन्या होती तो ? मैं कहता हूँ, अगर आपने जबरदस्ती की ओर अपनी जिद पर क़ायम रहे तो निश्चय ही आपको अधिक अपमानित और लज्जित होना पड़ेगा। उस समय अगर विवाह करने से मैंने इनकार कर दिया तो सोचिये आपकी क्या हालत होगी ? आप मुझसे नाराज़ हो जाँय, आप मुझे घर से निकाल दें, आप जो चाहे सज़ा मुझे दे लें, लेकिन मैं अन्याय नहीं कर सकता। निर्दोष, असहाय कुमारी ज्योतिर्मयी का अपमान, उनके प्रति अन्याय और ज़्यादती मुझसे बर्दाश्त नहीं हो सकती। क्षत्रिय पुत्र अपने मानापमान का विचार करने के पहिले अपनी ललनाओं के, अपनी बहिनों के मानापमान का ध्यान रखते हैं। याद रखिये, अब वह मेरी पत्नी नहीं है। विवाह से इन्कार करने के बाद वह मेरी बहिन हो चुकी हैं। इस समय मैं अपनी बहिन का साथ दे रहा हूँ, आपका विरोध नहीं कर रहा।" यशवन्त आवेश से काँप रहा था। आँखों से ज्योति की किरनें फूट रही थीं।

"लाल यशवन्त सिंह, दामाद के रूप में आज तुम्हें मैं ज़रूर खो रहा हूँ, लेकिन बेटे के रूप में पाकर आज मैं अपने को कृत कृत्य मानता हूँ। ज्योति के कोई भाई नहीं था, तुम्हारे जैसा भाई पाकर आज वह सचमुच धन्य है। भगवान चाहेंगे तो उसका विवाह कहीं न कहीं हो ही जायेगा। इस समय मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। लाल साहब" लाल कुलवन्त सिंह की ओर घूम कर, पास जा ठाकुर भगवान सिंह ने कहा, "हम आप दोनों बूढ़े हो चले। आज का युग इन युवकों के ही हाथों में है। आइये, हम आप इनको आशीर्वाद दें कि ये अपने जीवन मार्ग पर सजग हो हमेशा आगे बढ़ते जाँय। अभी सरकार ने जिस बात की ओर हमारा ध्यान दिलाया है उसकी भी

कुछ चिन्ता करनी चाहिये। पश्चिम में फैली हुई आग की लपटें धीरे धीरे पूरब की ओर बढ़ती आ रही हैं। जैसी ख़बरें आ रही हैं वह चिन्ताजनक हैं। जब दूसरे राजे-रजवाड़, ज़िमीदार, जागीरदार, सरदार अपने प्राणों की बलि चढ़ाकर फिरंगियों का सामना कर रहे हैं तो हमें भी अपना कन्धा लगाना चाहिये।"

लाल कुलवन्त सिंह जले भुने बैठे थे। उन्हें अपने बेटे पर रह रह कर क्रोध आ रहा था। लेकिन उससे अधिक ठाकुर भगवान सिंह से वह नाराज़ थे। उन्हें ऐसा लगता था कि यशवन्त पर ठाकुर साहब ने कोई जादू फेर दिया है, वरना उसकी क्या मजाल थी कि वह भरे दरबार में इतने लोगों के सामने उनकी बेइज्जती करता। वह आये थे इसकी पूरी आशा करके कि उनकी बात मानी जायेगी और ज़बरदस्ती ज्योति की शादी यशवन्त से करने का फ़ैसला पच दे देंगे। लेकिन यहाँ हुआ इसके उल्टे ही। उन्हें लगा कि यशवन्त, सरकार और ठाकुर साहब की गुप्त मन्त्रणा सफल हो गई, भरे दरबार में वह ज़लील हुये और इन सब लोगों ने मिलकर उन्हें कहीं का नहीं रखा। लेकिन इससे क्या? वह सोचते रहे, 'बदला तो मैं लूँगा ही। अगर इस अपमान के बदले ठाकुर भगवान सिंह को धरती की धूल न चटा दी तो मैं राजपूत नहीं'। और, ठाकुर भगवान सिंह पास ही खड़े कह रहे थे, "लाल साहब, आप क्या सोच रहे हैं? हटाइये, इन बातों में क्या रखा है? आप का हमारा इतना पुराना सम्बन्ध ऐसी ज़रा सी बात के लिये टूट थोड़े ही जायेगा। आप मुझसे नाराज़ हैं, लेकिन कल हो आपकी नाराज़गी दूर हो जायेगी।"

"अच्छी बात है, देखा जायेगा।" चिढ़कर लाल साहब ने जवाब दिया। ठाकुर साहब अपने स्थान पर चले आये। युसुफ़ जाह बहादुर ने दरबार ख़त्म कर दिया और सभी जागीरदार और सरदार उठ उठ कर चलने लगे। लाल साहब उठे, सरकार के पास गये और आवेश में कहने लगे "सरकार, मेरी बेइज्जती हुई है। मेरे साथ

अन्याय हुआ है, ज़ुल्म हुआ है। यह दरबार था, वरना मैं ठाकुर साहब से बदला ले लेता। बहरहाल, इस समय तो मैं जा रहा हूँ, डरकर, बेइज्जत होकर। लेकिन इसका बदला मैं अवश्य लूँगा। सरकार जानते हैं, राजपूत अपनी बात के पक्के होते हैं।" उत्तर का इन्तज़ार किये बिना, सरकार को जल्दी से सलाम कर, लाल कुलवन्तसिंह चल दिये। युसुफ़ जाह उनको देखते ही रह गये।

दरबार ख़ाली हो गया। युसुफ़ जाह अपने स्थान पर उदास पड़े रहे। ठाकुर साहब और यशवन्त के पास आने पर उन्होंने उन दोनों को अपने पास बैठा लिया। कुछ देर इधर उधर की बातें होती रहीं. फिर युसुफ़ जाह ने वही सवाल उठाया, "आप लोगों का ध्यान उधर है इसमें कोई शक नहीं। लेकिन जब आग लग जाय तो कुँआ खोदने से फ़ायदा ? मैं तो यही कहूँगा कि अब ज़्यादा सोचने विचारने का समय नहीं है। आप लोग अब तैयारी में लग जाँय तो कामियाबी ज़रूर मिलेगी। कल मेरे पास उधोपूर का गुमाश्ता आया था। वहाँ के ठाकुरों और पठानों ने ख़ूब तैयारी कर ली है। गुमाश्ते ने बताया कि वह लोग हमारे इशारे का इन्तज़ार कर रहे हैं। लेकिन यहाँ के लोग अभी सो रहे हैं। सो तो मैं ख़ुद भी रहा था। मेरा भी क़सूर है। लेकिन अब आगे की सोचना चाहिये।"

"आप इसीलिये उदास हैं क्या ?" ठाकुर साहब ने निश्चिन्त हो पूछा।

"नहीं, उदास होने से क्या होगा ? कल से मैं परेशान ज़रूर हूँ। हमारे गाँव के ठाकुरों में पहिले जैसी बातें नहीं रह गईं। सभी अपने अपने में मस्त हैं। ऐशोइशरत और बहादुरी दिलेरी में बैर है। वह ज़माना गया जब ये लोग कमर में तलवार बाँध कर मोहब्बत की जाम पिया करते थे। घबराहट यह है कि हम मैदान में कुछ कर भी पावेंगे ! दूसरे ज़िलों में तो कम्पनी बहादुर के सिपाहियों और जनरैलों को लोहे के चने चबाने पड़े हैं। कानपूर में नाना साहब की फ़ौजों

ने इनके धुर्रे उड़ा दिये हैं। छठी का दूध याद आ गया है बच्चा लोगों को। लेकिन पूरबी ज़िलों से ऐसी ख़बरें नहीं आ रही हैं और हम लोग तो सुख की नींद सो रहे हैं, चैन की बंसी बजा रहे हैं। शर्म और ग़ैरत से हमारा क्या वास्ता ?" युसुफ़ जाह का चेहरा तमतमा उठा। "बताइये ठाकुर साहब, क्या किया जाय ?" चढ़ी हुई भौंहों को सिकोड़, ध्यान से ठाकुर साहब से युसुफ़ ने पूछा।

"हुज़ूर, यह रंगपूर है। यहाँ के लोग हमेशा मौज पानी में मस्त रहे हैं। छोटे से बड़े तक, ग़रीब से रईस तक यहाँ सभी रंगीन तबीयत के आदमी हैं। लेकिन, आप विश्वास कीजिये मौक़ा पड़ने पर यहाँ के लोग जूझना भी जानते हैं। आप उन दिनों बहुत छोटे थे। ज़माना बड़े सरकार का था। ज़रा सी बात पर तलवारें बज गईं, लोहे की खनखना हट से फिरंगियों के हवास गुम हो गये और तीसरे दिन ही समझौता हो गया। रगो में अभी वही ख़ून है। नाउम्मेदी और परेशानी की कोई बात मुझे तो दिखाई नहीं देती। आप मुझे थोड़ा सा वक्त दें। इधर उधर लोगों से मिल आऊँ तो आपके पास सही ख़बरें पहुँचा सकूँगा।"

"ज़रूर, ज़रूर। मुझे तो तभी राहत मिलेगी जब कि मुझे यक़ीन हो जाय कि मौक़ा पड़ते ही, डंका बजते ही हमारा हर हथियार उठाने वाला नौजवान और बूढ़ा मैदान में दिखाई देगा।"

यशवन्त अब तक चुप बैठा था। उसे अपने पिता की बातों पर ग्लानि हो रही थी। शर्मिन्दा और दुखी हो वह सिर नीचा किये सुनता रहा। दरबान ने जब ख़बर दी कि दीनमोहम्मद जुलाहा बाहर आया हुआ है तब जैसे वह जाग गया। वह उठा और दीनू को लाने स्वयं बाहर चला गया।

अन्दर आकर दीन मोहम्मद ने झुककर सरकार को समाल किया। युसुफ़ जाह ने उठकर दीन मोहम्मद की गले से लगा लिया। ठाकुर

साहब और यशवन्त दोनों को इस बात से आश्चर्य हुआ। दीन मोहम्मद बिल्कुल घबरा गया। युसुफ़ समझ गया। "दीनू शेख़", युसुफ़ ने कहा, "यह दरबार नहीं है। यहाँ दरबारी तरीकों की ज़रूरत नहीं है। तुम मेरे बुज़ुर्ग हो। एक ज़माने के बाद मुझे तुम्हारा नियाज़ हासिल हुआ है। क्या तुम समझ सकते हो, इस वक़्त मुझे कितनी ख़ुशी हासिल हुई है? मैं तुमसे माफ़ी माँगना चाहता हूँ, दस्त बस्ता माँफी माँगना चाहता हूँ। मेरे नौकर तुम्हें पहिचान न सके। उन्हें क्या मालूम कि तुम कौन हो? मुझे माफ़ कर दो बाबा!"

दीन मोहम्मद की आँखों में आँसू गये। वह कुछ बोल न सका। जिस युसुफ़ के लिये उसने तरह तरह की धारणायें बनाईं थी, जिसे वह इतना ख़राब समझा था, वही इस समय शराफ़त का पुतला दिखाई पड़ा। युसुफ़ के व्यवहार ने दीन मोहम्मद की उन प्राचीन सोई स्मृतियों को जगा दिया जो उसकी क़ीमती थाती थीं, और जिन्हें याद कर वह अब तक अपने अतीत पर गर्व कर लिया करता था। बड़े सरकार का ज़माना याद आया, अपनी इज़्ज़त, वक़त, क़द्र याद आई। अपने अच्छे दिन याद आये। वह रो पड़ा।

"यह क्या है बाबा? तुम्हारी पलकें क्यों नम होती जा रही हैं? कोई तकलीफ़ है क्या?" चिन्तित हो युसुफ़ ने पूछा।

"नहीं साहबज़ादे। ये ख़ुशी के आँसू हैं, अफ़सोस और ग़म के नहीं। तुम्हें देखकर बड़े सरकार की याद आ गई। अपना पुराना ज़माना याद आ गया। वह भी कैसे दिन थे! आह भर कर बूढ़े दीन मोहम्मद ने आँखें बन्द कर लीं।

"बिटिया मज़े में है दीनू?" ठाकुर साहब ने पूछा।

"हाँ, सरकार। आपकी मेहरबानी से ज़िन्दा है।"

'इस वक़्त कैसे तकलीफ़ की? कोई ज़रूरी काम है?" युसुफ़ ने पूछा।

"जी हाँ, अभी मैं बाज़ार से लौटा आ रहा हूँ।" दीनू ने धीरे से से आवाज़ दबा कर कहा। "वहाँ एक फ़क़ीर से मुलाक़ात हो गई। अजब सा फ़क़ीर था। मुझे तो उसके ऊपर शक होने लगा। उसने मुझे एक रोटी दी और कहा 'इसे युसुफ़ जाह बहादुर को देना और उनसे कहना इसे अपने जागीरदारों, सरदारों और आस पास के लोगों के पास भी भेज देंगे।' रोटी तो मैंने ले ली, लेकिन डर लग रहा था। सीधे वहाँ से यहीं आ रहा हूँ। लीजिये यह है रोटी," अपने पेट में बँधी पोटली खोलते हुये दीन मोहम्मद ने कहा। उसने रोटी युसुफ़ के हाथों में दे दी।

संदेह और शंका से रोटी को देखते हुये युसुफ़ ने यशवन्त की ओर आँखें उठाकर कहा, "क्या हो सकता है इसके अन्दर? देखने से तो मामूली आटे की रोटी लगती है।" फिर उसे उलट कर कहा, "तोड़ूँ क्या इसे? शायद इसके भीतर कुछ हो!"

"हुज़ूर, तोड़ने के लिये तो उस फ़क़ीर ने कहा नहीं था। रास्ते में मैंने सोचा इसे फेंक दूँ। जाने क्या जादू टोना हो। फिर कुछ सोचकर रुक गया। सोचा, हुज़ूर को दे दूँगा, आप जो ठीक समझेंगे, करेंगे।"

"जादू टोना क्या है जी, लाओ मैं देखता हूँ", कहते हुये यशवन्त ने रोटी अपने हाँथ में ले ली। उसे इधर उधर घुमा कर देखा और फिर बीच से दो टुकड़े कर दिये। टुकड़े होते ही उसमें से काग़ज़ का पुर्ज़ा निकला। सभी आँखें फाड़ फाड़ उसे देखते रहे। सबके हृदय में उत्कण्ठा थी, सभी आशंकित थे। यशवन्त ने पढ़ना शुरू किया।

आप हिन्दू हों तो आपको गऊ माता की शपथ, आप मुसलमान हों तो आपको क़ुरान मजीद की क़सम, इसे पढ़िये और पढ़ने के बाद दूसरे सरदारों और जागीरदारों के पास भेज दीजिये।

बग़ावत शुरू हो गई है। कम्पनी की फ़ौजों का सामना हिन्दुस्तानी फ़ौजें दिलेरी से कर रही हैं। लड़ाई पश्चिम से बढ़कर पूरबी ज़िलों

की ओर आती जा रही है। हमारी क़िस्मत का फ़ैसला हमारी फ़ौजें करेंगी। आप सिपाही, हथियार, रसद से हमारी मदद करें। कम्पनी की फ़ौजें बेरहम और ज़ालिम हैं। वह हमारी माँओं, बहिनों की लाज की भी पर्वाह नहीं करतीं। वह हमारे गाँवों घरों को जलाती, हमारी जनता को मारती चली आ रही हैं।

आपको अपने बुज़ुर्गों की क़सम, अपनी तलवारों की क़सम, अपने अपने घरानों की क़सम, फिरंगियों से लड़ी जाने वाली इस आख़िरी लड़ाई में आप हमारा साथ दें। इसी में हमारा आपका भला है।

जब फिरंगी फ़ौजें आपके गाँव और ज़िले के पास जाँय तो आप डटकर उनका मुक़ाबिला करें और उन्हें मार भगायें, नहीं तो आपका गाँव बर्बाद कर दिया जायेगा, आपके पशु मार डाले जायँगे, आपके खेत फूँक दिये जायेंगे, आपकी बहू बेटियों की इज़्ज़त लूट ली जायेगी, आपका कोई भी जवाँमर्द नौजवान जीता न बचेगा।

वक़्त रहते काम कीजिये, वरना हमेशा के लिये पछताना होगा।

ह० मंगलसिंह

सबने ध्यान से यह पत्र सुना। सबका दिल धड़क रहा था। युसुफ़ ने गंभीरता से ठाकुर साहब की ओर देखा। यशवन्त का चेहरा आवेश से भरभरा आया था। उसने युसुफ़ की ओर ध्यान से देखा। दीनमोहम्मद भी सब कुछ समझ रहा था। बाज़ार में जो चर्चा चल रहा था वह ठीक था। वह आदमी फ़क़ीर नहीं था। सरदार मंगल सिंह का गुमाश्ता था।

युसुफ़ ने पूछा "अब ?"

"अब क्या ? याद हैं तुम्हें उस दिन की बातें ? चलो, अपने हलके के इस छोर से उस छोर तक आग लगा दें। आज से हमारा बाना बदल गया, हमारे भाव बदल गये, हमारा काम बदल गया,

हम बदल गये। युसुफ़ भाई, अब कुछ सोचना नहीं है। सरदार मंगल सिंह के नाम से फिरंगी फौजें थर्राती हैं। वह हमारे नेता हैं, हमारे रहनुमा हैं। अब तक वह आगे बढ़कर दुश्मनों से लोहा लेते रहे हैं। उनका आदेश आया है। सोचना समझना क्या है? अब काम करने का वक़्त है। चलो, अपनी माँओं बहिनों की लाज के नाम पर जनता को जगायें, सरदारों के चेतायें, सबको संगठित करें। तुम कहा करते थे कि हम आनन्द करना भी जानते हैं और रण भूमि में जूझना भी। जूझने का समय आ गया, युसुफ़ भाई।" यशवन्त आल्हाद और आवेश से काँप रहा था। प्रसन्नता और गर्व के आँसू उसकी आँखों के कोरों में आ गये थे।

"ठाकुर साहब, आप चुप क्यों हैं?" युसुफ़ ने पूछा।

"चुप नहीं हूँ, हुजूर! सोच रहा हूँ, हमें अब जुट जाना चाहिये। आपसी मन मुटाव और भेद भाव को समाप्त कर हमें अब रण चण्डी की आराधना में सलंग्न होना चाहिये। ऐसा मौक़ा बार बार कहाँ आता है!" ठाकुर साहब का दाहिना हाथ कमर से लटकती तलवार की मूठ पर बार-बार पहुँच जाता। वह कहने लगे, "शान से जीना और शान से मरना हम जानते हैं। जिस धरती ने हमें जन्म दिया, जिसकी गोद में खेल खाकर हम इतने बड़े हुये उसकी मान मर्यादा की भी रक्षा हमें करनी है। आततायी विदेशी फिरंगियों ने हमें अपमानित करना चाहा है। हमारा सब कुछ ले लिया, अब हमारा धर्म भी लेना चाहते हैं। लेकिन अच्छों को उन्होंने बैना दिया है। हुजूर की क़सम खाकर कहता हूँ, रंगपूर की ज़मीन फिरंगियों के ख़ून से लाल होगी। हुजूर जैसे सरदार के रहते हुये हमें किस बात का डर?"

"और दीनू शेख़, तुम क्या कहते हो?"

"मैं क्या कहूँ हुजूर! नमक खाया है, अदा करूँगा। बूढ़ा हूँ, शरीर में रक्त नहीं है, सकत भी नहीं है। लेकिन हड्डी पुरानी है।

धोखा न दूँगा। बेटी बोटी कट जाने के बाद भी हटूँगा नहीं, पछताऊँगा नहीं। जवान बेटी है। उसी की फ़िक्र है। आप लोग उसका इन्तज़ाम कर ही देंगे। घर में टूटा चर्ख़ा है, पुराना करघा है जिसे शायद दीमक खा रहे हैं। उन्हें जला दूँगा। अब उनके दिन ढल गये। अब उनकी क्या ज़रूरत है? फौज आयेगी, उसका मुक़ाबला भी हम करेंगे। दीनू ग़ुलाम की पहिली लाश होगी जिस पर चढ़ कर फिरंगी हमारे गाँव की ओर आ सकेंगे।" दीनमोहम्मद की सतेज आँखें चमक रही थीं।

"आज मुझे बड़ी ख़ुशी है। वालिद बुज़ुर्ग के गुज़र जाने के बाद मैंने अपना सारा वक़्त ख़राब किया। कभी मैंने अपनी परजा का ख़्याल नहीं किया। उसके सुख आराम का ध्यान मुझे कभी नहीं आया। मैंने ऐश करना ही अपनी ज़िन्दगी का शेवा बना लिया था। मुमकिन है इससे हमारे सरदारों और जागीरदारों में बदगुमानी भी फैली हो। लेकिन मैं अब अपना सारा ध्यान बटोरकर आप लोगों की ख़िदमत करना चाहता हूँ। बहुत अच्छे मौक़े पर सरदार मंगलसिंह का हुक्मनामा आया है। इधर हफ्तों से तरह-तरह के ख़्यालात मन में उठ रहे थे। मैं अपनी इस तरह की ज़िन्दगी से ऊब रहा था। यशवन्त से उस दिन बातें हुईं। तभी से कुछ और भी पक्का हो गया था। और, अब तो हमारे क़ौमी सरदार का हुक्मनामा आ ही पहुँचा है। कोई कितना ही बेग़ैरत क्यों न हो, ऐसे मौक़े पर ख़ुद्दारी जाग जाती है। ज़लील आदमी भी इन्सानियत के इस तक़ाज़े को, क़ौम की इस पुकार को, अपने क़ौमी सरदार के इस हुक्मनामे को अनसुनी नहीं कर सकता। मैं वायदा करता हूँ कि मैं कोई बात बाक़ी न उठा रखूँगा। मेरे पास जो कुछ भी है सब आपकी ख़िदमत में हाज़िर है। मेरे जितने आदमी हैं सब आपका हुक्म बजायेंगे। मेरी परजा मेरा साथ देगी, इसका मुझे यक़ीन है। ठाकुर साहब! अब जी नहीं मानता। मन यह कहता है कि तैयार हो जाओ, डंके पर

पहिली चोट पड़े और तुम्हारी तलवारें म्यान के बाहर आसमान में चमचमाने लगें, दूसरी चोट पड़े और जूझ जाओ, तीसरी चोट पड़े और तलवारें दुश्मनों का ख़ून चाटने लगें। चोट पर चोट पड़ती जाये और दुश्मनों के सर ज़मीन पर लुढ़कते जायें। फिरंगी भी ज़रा हमारी हुब्बे-वतनी, ख़ुद्दारी और सरफ़रोशी का तमाशा देखें। कम्पनी बहादुर ने हमें पदवी देकर, घूस देकर, एक दूसरे के ख़िलाफ़ बरग़ला रखा था। ज़रा वह देखे, सबको हमेशा के लिये बेवकूफ़ नहीं बनाया जा सकता। उसे पता तो चले ख़ून पानी से गाढ़ा होता है, अपने अपने ही होते हैं। पराये अपनों की जगह नहीं ले सकते। ठाकुर साहब! इसी तरह का तूफ़ान दिल में उठ रहा है।"

युसुफ़ जाह बहादुर उन्मत्त से हो उठकर टहलने लगे। मुट्ठियाँ कमर पर पीछे की तरफ़ बँधी हुई थीं। नाप नाप कर पैर रखते। कभी सीना फुलाकर फिर गहरी साँस छोड़ देते, कभी ओठ चबाने लगते। जैसे मन के उबलते भावों को दबाना चाहते हों।

"अच्छा, आज्ञा हो तो चलूँ। जल्दी ही सेवा में उपस्थित होऊँगा। सोचता हूँ ठाकुर राम उजागर सिंह से आज ही कल में मिल लूँ। बूढ़े आदमी हैं, अनुभवी और समझदार। उनके पास जाने से बहुत सी बातों में सही राय मिल सकेगी। यों भी गाँव में वह सरग़ना माने जाते हैं। एक बार हाँक लगा दें तो शायद ही कोई घर में बैठा रह जाये। तुम यहीं रहोगे यशवन्त सिंह?" ठाकुर साहब ने उठते उठते पूछा।

"नहीं, मैं भी आपके साथ ही चलूँगा। बहिन ज्योतिर्मयी से मिलना है। अभी मेरी कलाई ख़ाली है। राखी बँधवानी है।" कहता यशवन्त भी उठ खड़ा हुआ।

"दीनू, तुम भी जाओगे?" युसुफ़ ने पूछा।

"जैसा हुक्म हो हुज़ूर!" दीन मोहम्मद ने कहा।

"नहीं, अभी तुम रुको, थोड़ी देर में जाना।"

ठाकुर भगवान सिंह यशवन्त को साथ लेकर चले गये। दीन मोहम्मद बैठा रहा। युसुफ़ भीतर गया और कुछ कपड़े और एक मुट्ठी में रुपये लेकर वापस लौटा। दीन मोहम्मद एक टक युसुफ़ की ओर देखता रहा। पास आ युसुफ़ ने कहा, "दीनू शेख़, हाथ खोलो।"

दीनमोहम्मद ने दोनों हाथ फैला दिये। उन हाथों पर रुपये रख युसुफ़ ने कुछ कपड़े रख दिये। कुछ सोचकर युसुफ़ ने कहा, "दीन-मोहम्मद, मैंने तुमसे पहिले ही कहा था और अब भी कहता हूँ, मैंने तुम्हारे साथ अपना फ़र्ज़ पूरा नहीं किया। मैं इससे शर्मिन्दा हूँ। ऐसा मत समझना कि यह सब देकर मैं सख़ावत दिखा रहा हूँ। नहीं दीनू, ऐसा नहीं है। तुम्हारे एहसानात मेरे वालिद पर थे। उसका बोझ मुझे ढोते रहना चाहिये था। मैंने ऐसा नहीं किया यह मेरी ग़लती थी। अब मैं उस ग़लती को दोहराना नहीं चाहता। तुम मुझे माफ़ कर दो।" युसुफ़ की आजिज़ी ने दीनमोहम्मद को पिघला दिया और वह फूट-फूट कर रोने लगा। उसे लगा जैसे बड़े सरकार सामने बैठे उससे ऐसी बातें कह रहे हैं।

युसुफ़ ने फिर कहा, "दीनू! ख़तरनाक़ दिन आने वाले हैं। मुसीबत की घड़ियाँ आ रही हैं। बादल घने होते जा रहे हैं। क्या यह अच्छा न होगा कि तुम ज़ुलेख़ा को लेकर यहीं बँगले में आ जाओ। ज़ुलेख़ा ज़नान खाने में रहेगी और तुम यहाँ रहना।"

दीनमोहम्मद चुप रहा। कुछ देर इन्तज़ार करने के बाद युसुफ़ ने फिर पूछा, "क्यों, क्या सोच रहे हो?"

"ख़ता माफ़ हो तो अर्ज़ करूँ।"

"हाँ, हाँ, कहो।"

"यही कि इसके लिये हुज़ूर माफ़ कर दें। अपनी झोपड़ी से मुझे बड़ी मोहब्बत है। उसी में मैं पैदा हुआ, उसी में पलकर बड़ा हुआ, उसी में मेरी शादी हुई। ज़ुलेख़ा की माँ के मरने के बाद उसी में मैंने अपने दुख और नाउमेदी की घड़ियाँ काटीं। ज़ुलेख़ा भी उसी में पलकर इतनी बड़ी हुई। अब उसे कैसे छोड़ूँ? हुज़ूर! हम ग़रीब अपनी झोपड़ी नहीं छोड़ सकते। छोड़ने का ख़्याल करते ही हमें बहुत दुख होता है। उसकी छप्पर के तार-तार में, सलाख़ सलाख़ में हमारी आत्मा बसी हुई है। उसे हम कैसे छोड़ सकते हैं? छोड़ देने पर वह गिर जायेगी, उसका नाम निशान भी बाक़ी नहीं बचेगा। उसके साथ, हमारे बुज़ुर्गों, पुरखों का निशान भी न रह जायेग। हुज़ूर, माफ़ कर दें तो बड़ी मेहरबानी हो।" हाथ जोड़ विनती सी करता दीनमोहम्मद बोला।

युसुफ़ की ज़बान बन्द हो गई। दीनमोहम्मद साँवले रंग का, सन की तरह सुफ़ेद लम्बी दाढ़ी वाला, लम्बा किन्तु दुबला पतला, ग़रीब लेकिन पाकदामन मुसलमान था। उसने कभी किसी की बुराई नहीं की, कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया, कभी किसी का सहारा नहीं लिया। अब ज़ईफ़ी आ गई थी, हाथ पाँव काम कम करते थे। पुराना धन्धा भी चौपट हो गया था। किसी तरह लाज ढँके जीता चला जा रहा था। लेकिन ग़ैरत अब भी इतनी बाक़ी थी कि किसी के दरवाज़े हाथ नहीं फैलाया। हाँ, सरकार की बात दूसरी थी। इस दरबार से उसे हमेशा मदद मिलती आई थी। इसलिये सरकार ने जब हाथ खोलने को कहा तो वह रुक न सका। लेकिन घर छोड़ देना, बाप दादों की यादगार को मिट्टी में मिल जाने देना उसे क़बूल न था। इसीलिये उसने युसुफ़ की आज्ञा न मानी। युसुफ़ की समझ में बात आ गई थी। वह कुछ न बोल सका। उसकी ज़बान बन्द हो गई।

दीन मोहम्मद चलने लगा तो युसुफ़ ने कहा, "अच्छी बात है।

मैं कहे देता हूँ ड्योढ़ीदार से। खत्ती से जितना अनाज चाहना ले जाना। तकल्लुफ़ मत करना, तुम्हें मेरी क़सम !"

"नहीं, हुज़ूर। तकल्लुफ़ और आप से ? आप ही का दिया खाकर हमेशा पला हूँ। ऐसा कैसे हो सकता है !"

'अच्छा जाओ, फ़िक्र मत करना किसी बात की। ख़ुदा हाफ़िज़।"

"ख़ुदा हाफ़िज़।" दीन मोहम्मद धीरे धीरे चला गया, लेकिन जब तक वह दिखाई दिया युसुफ़ की आँखें उसी की ओर लगी रहीं।

सामने बूढ़ा अपनी पतली लाठी टेक'ा एक एक क़दम संभाल कर रखता चला जा रहा था। संध्या की आख़िरी किरनें सामने के हरियाले खेतों में लहराती बालियों पर पड़ रही थीं। वृक्षों के पत्ते सोने से मढ़े जा रहे थे। पंछियों की क़तारें अपने नीड़ों की ओर चह चहातीं, उड़तीं चली जा रही थीं। बूढ़े के पाँव ख़ुशी के मारे तेज़ी से आगे बढ़ रहे थे। आज उसकी मुट्ठी गर्म है, काँधे पर नये कपड़े हैं। अपनी बेटी के हाथों में इतने रुपये और इतने अच्छे अच्छे कपड़े वह जब रखेगा तो उसकी क्या दशा होगी ? बूढ़ा सोचता जा रहा था। 'सलीनों बीत गई बेटी ने सेवइयाँ भी नहीं खाईं। अब वह सेवइयाँ पेट भर खायेगी और हँस हँस इधर उधर फुदकेगी, नाचेगी। अब कुछ दिनों तक उसे पेट भर खाना मिलेगा। उसके तन पर देखने लायक़ कपड़े सजेंगे।' बूढ़ा हौले हौले बढ़ा जा रहा था, अपनी उजड़ी, टूटी मड़ैया की ओर।

और, युसुफ़ की आँखें देख रही थीं उस जर्जर काया को जिसकी अन्तिम गिनी चुनी साँसे ही एक सहारा रह गई हैं; जो आस पास के लहराते खेतों की बालियाँ छू नहीं सकता क्योंकि वह उसके खेत नहीं हैं; जो अपना तन ढक नहीं सकता क्योंकि उसका कारोबार कम्पनी के कपड़ों की वजह से चौपट हो चुका है; जो अपनी एकलौती बेटी की अस्मत ढँकने के लिये मुश्किल से फटे चीथड़े ही जुटा पाता है, क्योंकि

ज़्यादा मेहमत करने की ताक़त उसके पुराने कमज़ोर शरीर में नहीं है। वह बूढ़ा हिन्दुस्तान की पुरानी संस्कृति, सभ्यता और गौरव का अन्तिम, अवशिष्ट, धुँधला, अस्पष्ट, प्रतीक है। हरे भरे खेतों के बीच से गुज़रने वाली पगडन्डी पर हौले हौले जाने वाला वह बूढ़ा चला ही जा रहा है, चला ही जा रहा है, क्योंकि दिन रहते उसे अपनी झोंपड़ी तक पहुंचना है। अँधेरा हो गया तो वह भटक जायेगा, शायद ठोकर खाकर गिर भी जाय।

युसुफ़ ने अपनी विशाल कोठी देखी, जिसे ज़िला या बंगला कहा जाता था। वह उदास हो गया। पश्चिम में सूरज की अन्तिम किरणें भी लुप्त हुई जा रही थीं। एक काला, मोटा आवरण जैसे सारे वातावरण पर, सारी प्रकृति पर पड़ता जा रहा हो। युसुफ़ ने गहरी साँस ली, बूढ़ा आँखों से ओझल हो गया। सूरज डूब गया।

× × ×

रास्ते में यशवन्त और ठाकुर साहब में अगली आने वाली लड़ाई के बारे में बातें होती रहीं। ठाकुर साहब की एक दो बार इस प्रकार के संघर्षों में भाग लेने का अवसर मिल चुका था। उनके लिये यह चीज़ बिल्कुल नई नहीं थी। दो बार वह फिरंगी टुकड़ियों से भिड़ चुके थे। रास्ते में उन्होंने अपने क़िस्से बताये। किस प्रकार जब शुरू में इस ख़ित्ते के इन्तज़ाम के सम्बन्ध में फ़ौज आई थी और उन्होंने उसका मुक़ाबला किया था। बाद में समझौता हुआ। एक बार आलम जाह बहादुर के जमाने में भी ऐसा ही मौक़ा आ गया था। कुछ छिट पुट लड़ाई हुई और लगा कि लड़ाई जम के होगी। लेकिन तीन दिन के बाद समझौता हो गया। अब यह तीसरा मौक़ा आ रहा है। ठाकुर साहब ने बताया कि, "फिरंगी देखने में भयानक लगते हैं, गऊ का मांस खाते हैं, किसी की बहू बेटी की परवाह नहीं करते। लेकिन हिम्मत और बहादुरी इनमें नहीं होती। प्राण देना और लेना ये नहीं

जानते। शराब पीकर लड़ने आते हैं। गिरफ़्तार होते ही बन्दरों जैसी खीसें निकाल कर हाथ जोड़ने और ज़मीन पर नाक रगड़ने लगते हैं। एक हमारे सिपाही हैं कि लड़ते हैं शान से, गिरफ्तार होते हैं शान से, और मरते भी हैं शान से।"

ठाकुर साहब कहते रहे, "इनसे युद्ध करना बहुत मुश्किल नहीं है। 'बम-बम, हर-हर महादेव' और 'अल्लाहो अकबर' के गगन भेदी तुमुल नारों से इनका कलेजा काँप उठता है और नानी की याद आने लगती है। हाँ, ये हमसे जब जीत जाते हैं तो शेर बनते देर नहीं लगती। जब देख लिया कि हम गिर गये हैं, हथियार पास में नहीं है और हम इन पर हमला नहीं कर सकते, तब ये अपने मोटे बूटों से हमारी नंगी छाती को रौंदते हैं, तरह तरह से पीड़ा पहुँचाते हैं, शायद इन के यहाँ इसी को बहादुरी समझा जाता हैं। ये हमसे किसी मोर्चे पर जीत नहीं सकते। लेकिन हमारी हार दो कारणों से होती है। पहिला तो यह कि इनका साथ कुछ हमारे देश भाई देते हैं। ये वह लोग हैं जो चन्द चाँदी के टुकड़ों के लिये अपना देश धर्म बेच चुके हैं। दूसरा यह कि, इनके पास बारूद के हथियार अच्छे हैं। नंगी तलवारों से तो नज़दीक आने पर ही हमला हो सकता है, बन्दूकें दूर तक निशाना मारती हैं। इनकी बन्दूकें हमारी बन्दूकों से अच्छी होती हैं।" कहते कहते ठाकुर साहब अपने घर पहुंच गये। यशवन्त रास्ते भर 'हूँ, 'हाँ करता रहा। लेकिन उसका ध्यान इस समय ज्योतिर्मयी की ओर था। सोच रहा था, कैसे उसके सामने जाऊँगा, क्या कहूँगा उससे?

बाहर यशवन्त को आदर से बैठा कर ठाकुर साहब भीतर गये अन्दर जाते ही आवाज़ दी, "अरे बेटी देख तेरा भैया बाहर आया हुआ है। कुछ जलपान करायेगी, कुशल-मंगल पूछेगी? अरे, कहं है रे ज्योति!" ज्योति के कानों में यह मीठी आवाज़ पड़ी तो उसके रोंये खड़े हो गये। इस अप्रत्याशित मधुर व्यवहार की उसे कदापि आशा न थी। पिता जी जब घर से निकले थे तो उदास औ

खिन्न थे। पहिले रोज़ तो बुरा भला भी कहा था। जब उसने खाना पीना बन्द कर दिया तब उनका दिल पसीजा। उनका क्रोध उतरा। उसका स्थान ग्लानि और निराशा ने ले लिया। उन्होंने ज्योति से कुछ भी कहना बन्द कर दिया। उससे बोलना छोड़ दिया। उदास अपने कमरे में पड़े रहते। आज जब दरबार के लिये जाने लगे तो आँखों में आँसू भर कर कहा था, "बेटी, तूने मेरी पगड़ी उतरवा ली। मुझे सबकी आँखों में ज़लील किया। देखें दरबार में पंच क्या फ़ैसला करते हैं। ख़ैर, वहाँ जो भी फ़ैसला हो। अब तेरा ब्याह यशवन्तसिंह से नहीं होगा। मैंने अभी तक किसी के सामने हार नहीं मानी थी, किसी के सामने सिर नहीं झुकाया था। लेकिन आज तेरे सामने मैं अपनी हार स्वीकार करता हूँ। मैं क्षत्रिय हूँ लेकिन पिता भी हूँ। अब तू जहाँ चाहेगी वहीं तेरी शादी होगी। तुझे किसी के गले ज़बरदस्ती नहीं मढ़ा जायेगा। अब तू स्वस्थ हो जा। खा पी ले। मैं अभी लौट कर तुझे सारी बातें बताऊँगा।" और अब उन्हीं पिता जी ने उल्लास के साथ इतनी मीठी आवाज़ में उसे पुकारा तो वह विह्वल हो गई। कुछ देर तक उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। बैठी रह गई अपने स्थान पर बिना हिले डुले। लेकिन जब पिता जी ने फिर पुकारा "अरे आयेगी भी बाहर या कोप भवन में ही पड़ी रहेगी? सुना नहीं, तेरा भैया बाहर आया हुआ है।"

ज्योति बाहर आ गई। ठाकुर साहब ने ज्योति को अपने कलेजे से लगा लिया। "तू जीत गई बेटी, यशवन्त तेरा भाई हो गया। बाहर बैठा है, उसे खिला पिला तो दे। थका हुआ चला आ रहा है दरबार से।" उन्होंने कहा, "और सुन, अब तू अपने ये कोप भवन वाले कपड़े उतार डाल। ज़रा ढंग से हो जा नहीं तो वह क्या कहेगा? जल्दी कर।" ठाकुर भगवान सिंह कपड़े बदलने अपने कमरे में चले गये।

यशवन्त बाहर की दालान में बैठा रहा। थोड़ी देर में भीतर से

पैरों की आहट आई और साथ ही प्रकाश की सतत चौड़ी होती रेखायें। यशवन्त ने देखा ज्योति अत्यन्त सुघरता से सजी मिठाइयों की तश्तरी दाहिने हाथ में और मोमबत्ती बायें हाथ में लिये चली आ रही है। मोमबत्ती के क्षीण प्रकाश में उसके मुखड़े का रक्ताभ स्वीर्णम चेहरा दमक उठा था। सिर पर से बार बार हटी जा रही हरी साड़ी और लाल चटकीली कुर्ती! हाथ की पतली उँगलियों के नाख़ून मेंहदी से लाल हो रहे थे। क्षीण कटि पर सोने की पतली लहरियादार करधनी। पाँव में छिम-छुम करते पायल, हल्के हल्के हाथ, हल्के हल्के पाँव। तश्तरी हाथ में लिये लजाती, शर्माती ज्योतिर्मयी धीरे-धीरे नज़दीक और अधिक नज़दीक आती गई। यशवन्त की अडोल आँखें उस ज्योतिपुञ्ज की ओर लगी रहीं।

तश्तरी एक ओर रख ज्योति ने मोमबत्ती छत से लटकते हंडे में रख दिया। हँडे के चारों ओर शीशे के रंग बिरंगे फ़ानूस थे। सारी दालान जगमगा उठी। ज्योति और यशवन्त दोनों चमक उठे। तश्तरी आगे कर ज्योति ने कहा, "जलपान कीजिये, पानी मैं लाये देती हूँ।"

यशवन्त मुस्करा उठा। "बड़ा घराना है। अभ्यातगत का सत्कार ऐसे ही होना चाहिये। लेकिन ज्योति, मैं अभ्यागत नहीं हूँ। मैं तेरे घर का प्राणी हूँ। तेरा स्वजन हूँ।"

ज्योति रोमान्चित हो गई। उसे यशवन्त की बात विचित्र सी लगी। तीन चार दिनों में ही इतना बड़ा परिवर्तन! जादू जैसा यह सब क्या हो रहा था। पिता जी का व्यवहार सहसा बदल गया। क्रोध, डाँट फटकार का स्थान दुलार भरे, सनेह सने शब्दों ने ले लिया। यशवन्त जो अभी अभी कुछ दिनों पहिले उसका पति होने वाला था, जिससे शादी करने से उसने स्वयं अकारण ही इनकार कर दिया था, और जिस बात को लेकर इन दोनों घरानों में टन्टा होने वाला

था, वही यश ज्योति से इस प्रकार अपना होकर बातें कर रहा था ! क्या इससे भी बड़ी अचम्भे की कोई बात हो सकती है ?

और यश, एक टक सस्नेह नेत्रों से ज्योति की ओर देखता रहा।

ज्योति ने अन्त में कहा, "क्या हुआ दरबार में ?"

"होता क्या ? पिता जी बेकार अँकड़ रहे थे। मुझे बहुत बुरा लगा तो जाने क्या क्या बक गया। वह तिलमिला उठे और तरह-तरह की धमकी ताऊ जी को देते हुए, मुझे जली कटी सुनाते हुए चले गये। हटाओ भी, उम्र ढलने पर ऐसा हो ही जाता है।"

"आपने" तश्तरी फिर आगे बढ़ाकर ज्योति बोली, "कुछ बेजा शब्द तो नहीं कह दिये आवेश में आकर ?"

"नहीं, बेजा शब्द तो नहीं कहे। हाँ, सख़्त ज़रूर हो गया था। लेकिन मैं मजबूर था। ज़बरदस्ती झगड़ा बढ़ाते जा रहे थे। मैं चाहता था कि कुछ और बातें हो। लेकिन वहाँ कौन सुनता है ? उन्हें तो अपने अपमान का बदला लेना था। मैंने कह दिया 'अगर आपने ज़बरदस्ती की और मैंने शादी से इनकार कर दिया तब आपकी शान का क्या होगा ?' यहीं पर सारी बात ख़त्म हो गई। उनका मिजाज़ हमेशा का ख़राब है। यों तो अच्छे आदमी हैं। लेकिन ज़िद सवार हो जाने पर जा बेजा का ध्यान नहीं रहता उन्हें। बस, जो धुन सवार हुई उचित हो अथवा अनुचित, चले जाते हैं नाक के सीधे। बहरहाल, छोड़ो उन बातों को। बताओ मेरी राखी कहाँ है ?"

ज्योति कट गई। राखी तो उस रोज़ शाम को झूले पर ही बाँधनी चाहिये थी। अब वह क्या करे ? शर्म से आहत हो उसने सिर नीचा कर लिया।

"अच्छा, अब ले आओ।"

"यह लो," कह ज्योति ने अपनी साड़ी के छोर से धागे निकाले और यशवन्त की दाहिनी कलाई में बाँध दी।

यशवन्त के नेत्र छलछला आये और ज्योति के भी। ज्योति एक रसगुल्ला उठा यश के ओठों के पास ले जाती हुई बोली, 'यह लो, राखी पहिनने की मिठाई।"

"ज्योति, तूने बड़ी भारी ज़िम्मेदारी मेरे कन्धों पर रख दी है। मैं तेरा भाई होने योग्य हूँ इसमें मुझे सन्देह है। मेरी कलाई उतनी मज़बूत नहीं है। फिर भी ज्योति, मैं वायदा करता हूँ मैं इस राखी की लाज रखूँगा। आशीर्वाद दे कि मैं इस योग्य हो सकूँ।" यशवन्त के होंठ काँप उठे। उसने ज्योति को अपनी बाहों में ले लिया। उसे सीने से लगा, पीठ थपथपाते करुण शब्दों में कहा, "ज्योति, मेरी बहिन" ज्योति ने उसके मुँह में रसगुल्ल रख दिया।

"अब आ, मैं तुझे खिलाऊँगा," कह कर यशवन्त ने मिठाइयों से ज्योति का मुँह भर दिया और ऊपर से फूले गालों पर दोनों हाथों से चपत लगा दी। ज्योति खिलखिलाना चाहती थी लेकिन उसके दोनों गालों में मिठाइयाँ भरी हुई थीं; आवाज़ निकलना असम्भव था।

"अरे, पानी भी पिलायेगी, या मिठाइयाँ ही खाता जाऊँगा?" यशवन्त ने ज्योति से कहा।

ज्योति फिर झेंप गई। अपने गाल में ख़ुद एक चपत जड़ कर ज्योति अन्दर भाग गई।

वह पानी और पान लेकर वापस आई तो यशवन्त तश्तरी साफ़ कर चुका था। यशवन्त ने पानी पिया। ज्योति ने पान आगे बढ़ाया तो यशवन्त की भावुकता फिर जागी—वही भावुकता जो इस समय तक युवकोचित तरल चपलता के झीने आवरण में छिपती सी जान पड़ने लगी थी। यश गंभीर हो गया।

"खिला ले ज्योति ये बीड़े। आज मिलन के बीड़े खा लूँ। कौन जाने किस दिन महाप्रयाण के बीड़े खाऊँ। ज्योति, कम्पनी की फ़ौजें बहुत जल्दी इधर आने वाली हैं। हमने निश्चय किया है कि हम उन का मुक़ाबला जम कर करेंगे। क्या होगा यह हम नहीं जानते लेकिन रंगपूर को जीतने के पहिले उन्हें एक बार लोहे के चने ज़रूर चबाने पड़ जायेंगे। उस दिन भी तेरे हाथ के बीड़े खाके जाऊँगा। खिलायेगी न बीड़े मुझे उस समय ?"

"हाँ, खिलाऊँगी। मैं तुम्हारी बहिन हूँ, लाल यशवन्त सिंह की। डरूँगी नहीं भैया, घबराऊँगी नहीं, तुम्हें चन्दन, अक्षत लगा, होठ लाल कर, बिदा करूँगी और कहूँगी 'विजयी होकर वापस आना मेरे भैया, मेरे वीरन।"

यशवन्त ने ज्योति को फिर कस के दबा लिया, उसका माथा चूमा और ड्योढ़ी के नीचे हो लिया।

यश चला गया लेकिन ज्योति यशवन्त की आख़िरी बात को याद करती खम्भे के सहारे बहुत देर तक खड़ी रही। उसने यश से कहा था, "हाँ, बीड़े खिलाऊंगी। मैं तुम्हारी बहिन हूँ।" लेकिन यश जैसे भैया का बहिन होना क्या आसान काम है। वह खड़ी सोचती रही।

और बाहर ठंढी पुरवैया सन् सन् चल रही थी।

—: o :—

# ५

शाम को डबरी जला कर ज़ुलेख़ा रसोई बनाने जा ही रही थी कि दीन मोहम्मद ने पुकारा, "ज़ूली, यह देख, मैं क्या लाया हूँ तेरे लिये।" ज़ूली ने आवाज़ सुनी। सोचा बाबा बाज़ार गये थे। शायद कुछ लाये ही हों। डबरी वहीं रख दौड़ कर बाहर आ गई। बूढ़े दीन मोहम्मद ने हाथ आगे बढ़ाकर कहा, "यह ले तेरे लिये कपड़े और रुपये लाया हूँ। सबेरे चीनी, दूध और सेंवइयाँ लाना और ख़ूब खाना।"

ज़ुलेख़ा ने कपड़े अपने कन्धे पर रख लिये और हाथ पर रुपयों को रख खनखनाती हुई दुलार से बोली, "कहाँ से मिल गये बाबा इतने रुपये तुम्हें? कपड़े बहुत अच्छे हैं।"

"सब ख़ुदा की रहमत है बेटा! वह सब देखता है। सब की ख़बर रखता है, सबको देता है। जिसने मुँह चीरा है वह खाना देगा, जिसने तन दिया है वह तन ढँकेगा भी।" आँखों में ख़ुशी के आँसू भर बूढ़े दीनू शेख़ ने कहा। पंजवक़्ता नमाज़ पढ़ने वाला, रोज़े रखने वाला, पाकदामन बूढ़ा दीन मोहम्मद ख़ुदा और क़ुरान शरीफ़ पर ईमान लाने वाला सच्चा मुसलमान था। दीन और मज़हब उसकी साँसों में थे। इसीलिये उसने अपनी बेटी को यह जवाब दिया।

लेकिन ज़ुलेख़ा समझ न सकी। बाबा के इस भेद भरे जवाब को न समझ सकने के कारण वह भरमाई आँखों से उसकी ओर देखती रह गई।

"आज मैं गया था युसुफ़ जाह बहादुर के बँगले पर। वैसे तो न जाता, लेकिन बाज़ार में एक फ़क़ीर मिला। उस फ़क़ीर ने

मेरे हाथ में एक रोटी दी और कहा, 'यह रोटी युसुफ़ साहब के पास पहुंचा देना।' सो मुझे वहाँ जाना पड़ा। पहुँचते ही युसुफ़ साहब ने मुझे गले से लगा लिया। मैं घबरा गया। जिनके पास उस दिन जाने तक को न मिला उन्हीं का सलूक इतना बदल कैसे गया! उन्होंने मुझसे बहुत बहुत माफ़ी माँगी और आते वक़्त ये कपड़े और रुपये दिये। यह भी कहा 'जितने नाज की ज़रूरत हो खत्ती से मँगवा लेना।' वह अपने नौकरों से कह देंगे। मुझे कोई तकलीफ़ न होगी। कह तो वह यह भी रहे थे कि अपनी झोपड़ी छोड़कर बँगले में चले आओ। लेकिन मैंने इन्कार कर दिया। बेटा, सब कुछ हो सकता है लेकिन अपना घर, अपनी धरती नहीं छोड़ी जा सकती। मेरे इन्कार करने पर वह बुरा नहीं माने। कहा, 'अच्छी बात है, तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं होगी।' बेटी, यह ख़ुदा की रहमत नहीं है तो और क्या है। सोचो, कितनी मुसीबत की घड़ियाँ तुमने काटी हैं। कितनी बार तुम्हें दोनों वक़्त सूखी रोटी तक नहीं मिली है। मैं इतना नालायक़ हूँ कि तुम्हें दो जोड़े ढंग के कपड़े भी न बनवा सका। लेकिन ख़ुदा की रहमत, उसका इन्साफ़ देखो, किसी न किसी बहाने से दे ही दिया।

"आख़िर युसुफ़ जाह बहादुर को क्या पड़ी थी कि जिस दीनू को उनके वालिद ने जन्म भर दोस्त की तरह माना और मरते वक़्त वसीक़ा बाँधने के लिये कह गये, उसी दीनू को इतने दिनों तक मरा हुआ, दुनिया में न रहने वाला समझ लेने के बाद भी उन्होंने इज़्ज़त बख़्शी, अपने पास बिठाया और चलते वक़्त बिदाई दी।" ऊपर आसमान की तरफ़ उँगली उठाकर उसने फिर कहा, "बेटी उस पर ईमान लाओ तो क्या नहीं हो सकता?"

दीनू यह सब कह रहा था, और ज़ुलेख़ा सारी बातों को समझने की कोशिश कर रही थी। वह सोचने लगी उस दिन वाली बाग़ की बातें। युसुफ़ ने रुपये दिये, कपड़े दिये, क्यों? अब मैं पहिले वाले दीनू शेख़ की बेटी नहीं, मेरा उनका रिश्ता बदल गया है। उनके

दोस्त जो हैं युसुफ़ साहब ! लेकिन अब्बा क्या जानें उन बातों को। अच्छा है जान के भी क्या करेंगे ?

"समझ गई, अब्बा" ज़ुलेख़ा ने हँसकर कहा। उसकी आँखें ख़ुशी से चमक रही थीं।

"क्या समझी बेटी ?"

"यही कि युसुफ़ साहब बहुत नेक आदमी हैं। लायक़ बाप के लायक़ बेटे।"

"ठीक कहती है तू ज़ूली ! मैं ग़लत फ़हमी में पड़ गया था। उस दिन नौकरों ने कुछ ऐसी बदसलूकी की कि उनकी ओर से मेरा दिल खट्टा हो गया। उसी ग़ुस्से में मैं उलूल जुलूल बक गया। अब मैं सोचता हूँ कि वह मेरी ग़लती थी।" कहते हुये बूढ़ा अपनी चारपाई की ओर बढ़ा और लेटता हुआ बोला, "ज़रा पैर धोता रे ज़ूली ! एक लोटा पानी रख के ज़रा चिलम भर लेती।"

ज़ूली पानी रख गई और चिलम के लिये आग तैयार करने लगी। बूढ़ा पैर धोकर लेट गया। उसके दिमाग़ में रोटी वाली बात चल रही थी। उस फ़क़ीर से बाज़ार में पेड़ के नीचे मुलाक़ात, उससे ज़रा हट कर एकान्त में बातें, रोटी छुपा कर बिना कुछ ख़रीद फ़रोख़्त किये बाज़ार से लौटना, बँगले तक डरते डरते पशोपेश और असमंजस के साथ जाना, यशवन्त का निकलकर उसे भीतर इज़्ज़त से ले जाना, युसुफ़ का गले मिलना, ठाकुर साहब की मौजूदगी में उसकी इज़्ज़त, फिर रोटी का तोड़ा जाना, काग़ज़ का रोटी में से निकलना और फिर सरदार मंगलसिंह की चिट्ठी। ओह, यह सब क्या हुआ था दिन भर ! कैसी कैसी अचम्भे की बातें, सब अनहोनी, नामुमकिन, लेकिन खटाखट आँखों के सामने, होश रहते होती गईं। ग़ज़ब है ! और अब आगे क्या होगा ? अगर फिरंगी लुटेरे इधर आये ! अगर उन्होंने लूट पाट शुरू की तो !' बूढ़ा सोचता रहा। उसका दिल दहल उठा।

दीनमोहम्मद कायर हो सो बात नहीं। लेकिन किसी आशंका और अमंगल की मूक सूचना जैसे उसको मिल गई हो। उसने इसका अनुभव बँगले पर नहीं किया जहाँ ठाकुर साहब मौजूद थे, लाल यशवन्तसिंह थे और ख़ुद सरकार बैठे हुये थे। रास्ते में वह कपड़े और रुपयों की बातें सोचता मगन मन चला आ रहा था। लेकिन घर आकर जब अपनी चारपाई पर लेटा तो उसे कुछ भय सा लगने लगा। उसने देखा ज़ुलेख़ा, भरे यौवन की प्रतिमा, उसके सामने खड़ी है। उसे ख़्याल आये वे बदचलन, बदज़ात फ़िरंगी और उनके ग़ुर्गे जो किसी की इज़्ज़त, अस्मत लूट लेना फ़ख़ की बात समझते हैं। उसे याद आया वह मंज़र जब कि सारे गाँव के नौ जवान और हथियार उठा सकने वाले लोग हारकर मैदान में पड़े होंगे, किसी का सिर न होगा, किसी का धड़ अलग होगा, किसी के हाथ पैर का पता न होगा और उसके बाद गाँव का लूटा जाना, खड़ी फ़सलों का फूँका जाना, धरती का वीरान होना, औरतों, बच्चों और कमज़ोरों का बूटों के नीचे कुचला जाना, चारों तरफ़ चीख़ पुकार, आग और धुआँ, मौत का साया, मौत का मंज़र! लगा, वह अकेला खड़ा क़ब्रिस्तान के पहरुये सा यह सब देखता रहेगा, टुकुर-टुकुर, टुकुर-टुकुर!

जाने कब तक बूढ़ा उसी तरह मुर्दा सा पड़ा रहा। चिलम की आग बुझने को आई, लेकिन पीने की याद न थी। सारा बदन पसीने से तर था। सिर में चक्कर आ रहा था। हाथ पैर डुलाने की सकत नहीं रह गई थी।

ज़ुलेख़ा उधर आ निकली तो देखा बाबा उसी तरह बे सुध पड़े हैं। चिलम की आग बुझने वाली है लेकिन उन्होंने एक कश भी नहीं खींचा। ज़ुलेख़ा पास आई। उसने बाबा को जगाया।

चौंककर बूढ़ा दीनमोहम्मद उठ बैठा। "कौन, मेरी बेटी, ज़ूली?"

"हाँ, बाबा। मैं हूँ! कैसी तबीयत है तुम्हारी। ऐसे चौंक क्यों पड़े? आग बुझने को आई लेकिन एक कश भी नहीं खींचा तुमने?"

"हाँ बेटी, कुछ ऐसा ही हो गया था। ठीक हूँ। कोई घबराने की बात नहीं है।"

कुछ और नज़दीक जा ज़ुलेख़ा ने दीनू के सीने पर हाथ रखा, वह ज़ोरों से धड़क रहा था। माथे पर हाथ रखा, वह ठंढा हो रहा था। बूढ़े की साँस तेज़ी से चल रही थी। ज़ुलेख़ा काँप उठी।

'कैसी तबीयत है बाबा?" उसने फिर पूछा।

"कुछ नहीं बेटी, सब ठीक है। मैं ज़रा डर गया था। आ मेरे पास आ। तुझे प्यार कर लूँ। मेरी गोद में आ बेटी।" बूढ़े ने ज़ुलेख़ा को अपने पास खींच अपनी गोद में ले लिया और उन्मत्त की भाँति उसके बाल और माथा चूमने लगा।

ज़ुलेख़ा स्वयं डर गई थी। वह बाबा के सीने से चिपट गई। बूढ़े ने उसे और भी कस के दबा लिया। और दोनों बहुत देर तक उसी तरह पड़े रहे।

"जा बेटी, दाल जल रही होगी। मेरी तबियत अब ठीक है। यों ही दिल घबरा गया था। बूढ़ा हूँ। अक्सर दिमाग़ में जाने कहाँ कहाँ की और किस किस तरह की बातें आ जाती हैं। तू न घबरा। घबराने की बात ही क्या है? मैं तो अभी ज़िन्दा ही हूँ।" सान्त्वना देते हुये दीनमोहम्मद ने कहा।

लेकिन ज़ुलेख़ा समझ रही थी कि डर और घबराहट में ही बाबा इस तरह बोल रहे हैं।

'बेटी, ज़माना ख़राब आ रहा है। कुछ ही दिनों में एक ऐसी विकट लड़ाई होने वाली है जिसमें हमारी हस्ती मिट जा सकती है। लेकिन उससे हम भाग नहीं सकते। उसमें हमें जूझना ही पड़ेगा।

जो भी नतीजा हो हम पीछे क़दम नहीं रखेंगे। और ज़ूली, मैं बदला लूँगा। जिन्होंने तेरे तन का कपड़ा छीना, मेरे मन का सुख चैन छीना, हमारे मुँह का दाना छीना, जिन्होंने हमारा कारोबार चौपट किया, हमारे चर्ख़े करघे बर्बाद कर दिये, उन्हें मैं माफ़ नहीं कर सकता। दर दर ठोकर खा चार पैसे के लिये ऐड़ी चोटी का पसीना एक कर मैंने तुझे पाला। लेकिन अब तक इतना भी मेरे पास नहीं है कि तेरी शादी कर सकूँ। जिन्होंने मुझे इस तरह लूटा, बर्बाद किया वही अब हमसे हमारी धरती छीनने आ रहे हैं, हमारे खेत, खेतों के लहलहाते पौदे, ये पेड़-पालो, मवेशी-जानवर सब बेगाने हो जायेंगे। यह ठीक है कि इन खेतों में जाने का मुझे हक़ नहीं था, इनकी बालियों को मैं छू नहीं सकता था, लेकिन इन्हें देख दिल उमड़ आता था। लगता था कि इनमें और मुझमें जन्म जन्म का रिश्ता है। अगर हम हारे अगर हम डरे, अगर अपनी जान बचाने के लिये हमने फिरंगियों के सामने सिर झुका दिया तो हमेशा हमेशा के लिये हम मिट जायेंगे। इस धरती की मुलायम छाती पर जब फिरंगियों के भारी बूट खटाखट पड़ेंगे तब क्या होगा ? नहीं ज़ूली, ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा नहीं हो सकता। अभी गाँव के जवानों में दम बाक़ी है। जिस गाँव में यशवन्त सिंह और युसुफ़ जाह बहादुर जैसे नौजवान पट्ठे बसते हों उसको बर्बाद करना हँसी ठट्ठा नहीं है। ज़ूली, तू घबरा मत, ऐसा कुछ नहीं हो सकता, ऐसा कुछ नहीं हो सकता।' बूढ़ा कहते कहते फिर लेट गया।

ज़ुलेख़ा अब्बा की छाती पर सिर रखे ऊपर छत की ओर देखती रही। उसके ढुलकते आँसू उसकी मानसिक पीड़ा और व्यथा के परिचायक थे, लेकिन वह बोल नहीं रही थी कुछ भी। उसके दाहिने हाथ की उगलियाँ अब्बा के फटे कुर्ते पर घूमती रहीं।

"जा बेटी, अब खाना पका ले। रात ज़्यादा हो रही है।" बूढ़े ने ज़ुलेख़ा को वहाँ से टालना चाहा।

'जाती हूँ अब्बा, अभी जाती हूँ।' कुछ रुक कर आँसू पोंछ ज़ुलेख़ा ने फिर पूछा, 'ऐसा क्यों होगा अब्बा ? यह लड़ाई क्यों होगी ? फिरंगी हमें क्यों बर्बाद करना चाहते हैं ? हमने उनका क्या बिगाड़ा है ? रूखी सूखी खा सुख चैन अपने घर में हमें वह क्यों नहीं रहने देना चाहते ?'

'इसलिये कि दूसरे राजे-रजवाड़ों ने इनकी ग़ुलामी में रहना ना मंज़ूर कर दिया है। कहते हैं यह धरती हमारी है। इस पर राज करने, इसका सुख भोगने का अख़्तियार सिर्फ़ हमको है। इस पर कोई विदेशी आकर क्यों राज करे ? कहते हैं एक बार अगर हम लोग मिल जॉय और मिलकर कोशिश करें तो ज़रूर इन्हें निकाल बाहर कर सकते हैं। अभी इनके पॉव अच्छी तरह जमे नहीं हैं। अभी इन्हें निकाल बाहर करना आसान है। बाद में मुश्किल ही नहीं नामुमकिन भी हो जायेगा। उधर फिरंगियों ने हमारे दीन ईमान पर भी हमला शुरु कर दिया है। हिन्दुओं को गऊ और मुसलमानों को सुअर के चमड़े के ताँत मुँह से खींचने पड़ते हैं। हम इसे कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं ? फिरंगी सबको किरस्तान बनाना चाहते हैं। धन लिया, कारोबार लिया, देश ज़मीन लिया, अब ईमान धरम पर भी हमला करना चाहते हैं। इसे हम बर्दाश्त नहीं कर सकते।" दीनू शेख़ ने क्रुद्ध होकर कहा, "हम उनकी धज्जी उड़ा देंगे। हम जान देंगे और जान लेंगे।"

'कब तक फिरंगी इधर आयेंगे बाबा' शान्त स्थिर ज़ुलैख़ा ने पूछा।

'यही, महीने दो महीने में आ सकते हैं। पच्छिमी ज़िलों में मुठ-मेड़ हो रही है। उसके बाद हम लोगों की ही बारी है।'

'गाँव में कुछ तैयारी हो रही है ?'

'हाँ, होगी अब। यहाँ के लोग ज़रा देर में जागते हैं। लेकिन जब जागते हैं तो अच्छी तरह। यशवन्त, ठाकुर भगवान सिंह के साथ

इसी फ़िराक़ में गये हैं। युसुफ़ जाह भी कह रहे थे अपना सब कुछ मिटाकर भी वह फिरंगियों का मुक़ाबिला करेंगे। जब ये लोग खड़े हो रहे हैं तो सारा गाँव उठ खड़ा होगा। राजा आगे आगे चले तो परजा क्यों न चलेगी ?'

'तुम कब मिलोगे यशवन्त सिंह से ?"

'क्यों, क्या बात है ?'

'ऐसे ही पूछ रही थी। बताओ, कल परसों तक तुमसे मुलाक़ात होगी ?'

'क्यों नहीं होगी ? ज़रूर होगी। कुछ कहना है उनसे ?'

'नहीं, उनसे क्या कहना है ? अगर आ निकलें तो एक दो बातें कर लेती। युसुफ़ साहब के पास कब जाओगे ?'

'कल जाऊँगा, कुछ अनाज लेता आऊँ। घर में खाने भर को हो जाय तो फ़िक्र कम हो और दूसरे कामों में मन लगे।

'दूसरे काम कौन ?'

'यही, गाँव-गिराँव में घूमूँ फिरूँ। देखूँ क्या क्या तैयारियाँ हो रही हैं। मुझे भी तो कुछ करना चाहिये।

'तुम क्या करोगे ? हथियार उठेगा तुमसे ? इतने बूढ़े हो गये हो ? तुम क्या कर सकते हो ?'

'बहुत कुछ कर सकता हूँ। अगर हथियार नहीं उठा सकता तो हथियार उठाने वालों की ख़िदमत तो कर ही सकता हूँ। सभी थोड़े ही हथियार उठाते हैं। उनके साथ सामान रसद ढोने वाले मज़दूर भी तो होंगे, ख़बरें पहुँचाने वाले गुमाश्ते तो होंगे। मैं अपने लिये काम ढूँढ लूँगा। काम की कमी नहीं है। अब तो मौक़ा मिला है, अपने पुराने घावों पर मरहम लगाने का। इस मौक़े को हाथ से नहीं जाने दूँगा। जब गाँव घर में आग लगे तो उसे बुझाने के लिये जिससे जो

बन पड़े करना चाहिये। ऐसे मौक़ों पर पूछ पूछ कर काम नहीं किया जाता। आग साथ ही बुझती है, छप्पर मिल कर ही उठाया जा सकता है।' बूढ़ा इस समय तक स्वस्थ हो चला था।

ज़ुलेख़ा को अब संतोष हुआ। उसकी जिज्ञासा का स्थान चिन्तन ने लिया और वह अपना दिल टटोलने लगी। कुछ देर तक उसी तरह बैठी रहने के बाद ज़ुलेख़ा उठी और चूल्हे के पास चली गई। बाबा के लिये फिर से चिलम भर, हुक्के पर रख वह रोटी पकाने लगी।

सामने चूल्हा जल रहा था। और चूल्हे पर पुराना टूटा सा तवा धरा हुआ था। ज़ुलेख़ा लोइयाँ बेलती और तवे पर रखती जा रही थी। यह सब यन्त्र की तरह हो रहा था। हमेशा से करती आई थी, कोई नया काम नहीं था। दाल की बटुली बग़ल में रखी आग पर पड़ी थी, फक फक कर दाल की भाप अक्सर बटुली के ढक्कन के ऊपर आ जाती। कभी कभी गर्म बुलबुले भी उठते और फूट जाते। यन्त्रचालित सी ज़ुलेख़ा कभी ढक्कन उठा कर दाल देख लेती, कभी रोटी सेकने लगती, लेकिन ध्यान उसका कहीं और था। वह कुछ सोच रही थी। बाहर बाबा हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे।

भावुक, अल्हड़, अजान, अबोध हृदय कुलाछें मारने का आदी होता है। उसपर कोई लगाम नहीं रहती, कोई नियन्त्रण नहीं रहता। वह देश देश, आसमान के सातों पर्दे पार करता, सभी ओर स्वच्छन्द हो बिचरता रहता है, क्योंकि उस पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं रहती। लेकिन ज्योंही ज़िम्मेदारी का बोझ आया और उसका उसे अनुभव हुआ वह कर्मठ हो जाता है। भरसक नाप तोल करने की कोशिश करता है। अदम्य उत्साह, निर्भीक स्वभाव होने के कारण वह भारी से भारी काम का बीड़ा आसानी से उठा लेता है। बेलौस होता है इसलिये उसे फल की विशेष चिन्ता अथवा हानि की विशेष आशंका नहीं

होती। वह जब उठता है तो कुछ करके ही बैठता है। वह निकलता है तो अपना उद्देश्य पूरा करके ही वापस आता है। ज़ुलेख़ा भी जवान थी। भोली और अबोध थी तो क्या हुआ? जवानी का अल्हड़पन उसे किसी भी ख़तरे का सामना करने के लिये अनुप्राणित और प्रेरित कर सकता था। इसी आधार पर ज़ुलेख़ा के विचार बनते-बिगड़ते उठते-गिरते रहे।

'लड़ाई होगी', उसने सोचा 'तब क्या होगा? दोनों ओर की फ़ौजें भिड़ेंगी। घमासान के बाद उनमें से कितने ही धरती की धूल फाँकते नज़र आयेंगे। बेजान लाशों और अधमरे सिपाहियों से धरती पट जायेगी। जो जीतेगा उसे ख़ुशी होगी। वह अपनी ज़िन्दगी का अरमान पूरा हुआ समझेगा। जो हारेगा वह कहीं का न होगा। कहीं भी मुँह दिखा सकना उसके लिये असम्भव होगा। जो काम आ जायेगा वह न हार देखेगा न जीत। वह आँख मूंद लेगा हमेशा के लिये। उसके पीछे क्या होगा इसका उसे पता भी न चलेगा। लड़ाई भी क्या चीज़ है! इसमें लड़ने वालों को क्या मिलता है? अगर काम आ गये तो बाद में चाहे जो हो, जो भी जीते हारे उनको क्या मिलेगा? अगर घायल हुये तो ज़िन्दगी भर घिसटते रहने के अलावा कोई रास्ता नहीं। अगर किसी तरह बच गये तो ज़रा सी शाबासी मिली, तमग़े लटकाये, वसीक़ा मिला और बस! तो क्या इतने ही के लिये ये लोग कटते मरते हैं अपनी जानें देते हैं!'

ज़ुलेख़ा का चिन्तन चलता रहा। कभी कभी उसका हाथ रोटी की जगह तवे से छू जाता। वह 'सी' करके रह जाती, लेकिन उसका ध्यान कभी न टूटता। वह सोचती, उतनी दूर विलायत से चलकर ये फिरंगी हमारे मुल्क में आये हैं। यहाँ आकर हमसे लड़भिड़ कर अपनी जानें देते हैं। लेकिन इनको मिलता क्या है? वही न, महीने भर की तनख़ाह और लूट का माल! तो क्या थोड़ी सी तनख़ाह और थोड़े से लूट के माल के लिये उन्हें अपनी इन्सानियत खो

देनी चाहिये ! अपनी जानों की बाज़ी लगा देनी चाहिए ? आख़िर, ये लोग सोचते क्यों नहीं ? इन्हें इतनी समझ क्यों नहीं होती ? इनका दिमाग़ क्यों नहीं काम करता ? अपने घर वालों, बीवी बच्चों को सात समुन्दर पीछे किस लिये छोड़ कर ये लोग चले आते हैं ? अगर ये मर गये, लड़ाई में बुरी तरह घायल हो गये तो इनके घर वालों का क्या होगा ? उनको कोन देखे भालेगा ? कितने बड़े बेवकूफ़ हैं ये फिरंगी। थोड़े से पैसों के लिये, अपने थोड़े से मालिकों के लिये अपनी जान कीड़ों मकोड़ों की तरह दे देते हैं !'

और, उसे ध्यान आया अपने गाँव वालों का, जो अब तक आराम की ज़िन्दगी बसर करते आ रहे थे, जो अपने बच्चों बीवियों, बहन-भाइयों में हँसी ख़ुशी से अपनी ज़िन्दगी की ख़ूबसूरत घड़ियाँ काट रहे थे। 'कल इनका क्या होगा ? और क्यों होगा ? आख़िर इन लोगों को क्या मिलेगा ? कम्पनी से अगर कुछ राजे रजवाड़े नाराज़ हैं और उससे बदला लेना चाहते हैं तो लें, मगर उनका साथ और लोग क्यों दे रहे हैं ? और लोगों को क्या मिलेगा ?' लगा, जैसे वह कुछ समझ नहीं सकती, सब कुछ उसकी समझ के बाहर है।

लेकिन वह सोचती गई 'क्या स्वार्थ ही से दुनिया का काम चलता है ? अगर सभी अपना ज़ाती स्वार्थ सोचने लगें तो दुनिया चल ही नहीं सकती। हमारे ही गाँव में' उसने सोचा 'आख़िर यशवन्तसिंह और युसुफ़ जाह को क्या पड़ी थी कि वह फिरंगियों से लड़ने की ठान लेते ? उन्होंने ऐसा इसलिये किया कि उनके देश और जाति के लोगों पर फिरंगियों ने ज़ुल्म किया, उनका कारोबार चौपट कर उन्हें भूखों मारा, उनके गाँव, घर, खेतों पर क़ब्ज़ा करके उन्हें ग़रीब और महकूम बनाया, उनके मज़हम पर हमला करके उनको नेस्तनाबूद करना चाहा, अगर सब मिल कर उनका मुक़ाबिला न करें तो बारी बारी से वे सबको बर्बाद, परेशान, ज़लील करेंगे। बाबा ने ठीक ही कहा था, 'आग सबके बुझाने से बुझती है।'

'तो फिरंगी आ रहे हैं। लड़ाई होगी। गोलियाँ चलेंगी। लोग मारे जायेंगे। अपनी जान देकर दूसरों की जान बचाने वाले, ख़ुद बर्बाद होकर दूसरों को बर्बादी से बचाने वाले सचमुच कितने अच्छे होते हैं! ये आदमी नहीं फ़रिश्ते हैं। जिन्हें अपनी जान की परवाह नहीं जो अपनी जान हथेली लेकर चलते हैं, जो जंग के मैदान में लोहे से लोहा बजाते हैं वे, सचमुच, आदमी नहीं हैं फ़रिश्ते हैं!'

ज़ुलेख़ा ने सोचा 'उसका यशवन्त भी फ़रिश्ता है, युसुफ़ भी फ़रिश्ता है, जो भी इस जंग में हिस्सा लेंगे, जो भी फिरंगियों का डट कर मुक़ाबिला करेंगे वह सब फ़रिश्ते हैं।' लेकिन वह ख़ुद, वह ख़ुद क्या है? एक अदना सी लड़की, ज़ुलाहे की, जिसकी करनी कुछ नहीं और दावा करती है यशवन्त जैसे ज़मीन के देवता से इश्क़ करने का, छि!', अपने को कोसती, तिरस्कृत करती बोली, 'मैं, ज़ुलाहे की बेटी, न रहने का ठिकाना न खाने को कुछ, न अपनी करनी ही, चली हूँ आसमान के तारे तोड़ने! यशवन्त से इश्क़ करना, उनसे ब्याह करना, उनकी हो के रहना मामूली बात नहीं है। मेरी क्या हस्ती जो उनको अपना बनाने का दावा कर सकूँ?' ज़ुलेख़ा बड़बड़ा उठी।

अर्धनिद्रित दीनू को सुनाई पड़ा कि ज़ुलेख़ा किसी से बातें कर रही हैं। वह चौंक उठा, 'अरे, किससे बातें कर रही है रे ज़ूली? कौन है वहाँ!"

ज़ुलेख़ा को अब होश आया। उसने देखा रोटियाँ बन चुकी हैं, लेकिन वह हाथ में बेलन लिये चुपचाप चूल्हे के पास बैठी हुई है। कब से वह यों ही बैठी हुई है यह उसे याद नहीं, लेकिन रोटियाँ कब की बन चुकी थीं यह वह आसानी से समझ गई। वह कुछ झेंपी और सहमी कि बाबा ने फिर आवाज़ दी, 'खाना पका लिया कि अभी नहीं? आज क्या रात भर खाना पकता रहेगा? हो क्या रहा है वहाँ, ज़ूली।'

'आई बाबा आई।' कह ज़ुलेख़ा उठ खड़ी हुई रोटियाँ और एक कटोरी में दाल ले वह बाबा के पास आ गई। रखा और बाबा से खाने को कह चुपचाप खड़ी हो गई।

खाना शुरू करते करते दीनू ने पूछा, 'वहाँ किससे बातें कर रही थी? बड़बड़ा तो नहीं रही थी अपने मन ही मन।'

'हाँ बाबा, खाना पकाते वक़्त मन जाने कहाँ कहाँ भरमता फिरा और खाना पका लेने के बाद भी मैं सोचती ही रही, सोचती ही गई। उसी में बड़बड़ा रही थी कि तुमने पुकारा। जाने क्या क्या बातें दिमाग़ में आईं और चली गईं!'

'क्या क्या सोचा?'

'यही, बेवकूफ़ी की बातें, फिरंगी थोड़े से पैसों के लिये अपने घर वालों को छोड़ इतनी दूर लड़ाई करने क्यों आते हैं? लड़ाई कम्पनी और राजों महाराजों में होती है तो इसमें दूसरे लोग क्यों हिस्सा लें? और लड़ाई में हिस्सा लेना और मरना खपना दुरुस्त है कि नहीं, इसी तरह जाने क्या क्या सोचती रही।' लापरवाही के साथ, झेंपती हुई ज़ुलेख़ा ने कहा।

'किस नतीजे पर पहुँची?' मुस्करा कर पानी का एक घूँट पी दीनू ने पूछा।

'इसी नतीजे पर कि फिरंगी बेवकूफ़ हैं जो इस तरह जानें देते हैं। लेकिन जहाँ तक हम लोगों का ताल्लुक़ है हमें मिलकर उनका मुक़ाबिला करना चाहिये, जिससे जितना भी बन पड़े क़ुरबानी करनी चाहिये और इस आम दुश्मन को बेरहमी के साथ मार भगाना चाहिये। मैंने यह भी सोचा कि जो लोग इस जंग में हिस्सा लेंगे वह आदमी नहीं फ़रिश्ते हैं, देवता हैं। उनका साथ देना, उनके रास्ते पर चलने लायक़ अपने को बनाना अपना फ़र्ज़ है!'

'वाह! तू अरस्तू और सुक़रातकी तरह बातें करने लगी। फ़िल

सफ़ा बताने लगी। वाह रे ज़ूली !' बूढ़े ने ख़ुश हो, ज़ुलेख़ा की हिम्मत बढ़ाने के लिये कहा।

'हाँ बाबा, मैं सच कहती हूँ, मैं यही सब सोचती रही। मेरा तो यही ख़्याल है कि जो लोग अपने देश गाँव, अपने खेतों, अपने कुनबे, बिरादरी, गाँव वालों के लिये अपने को मिटा सकते हैं, अपनी हस्ती मिटा सकते हैं, वह मामूली इन्सान के भेस में देवता हैं। उनकी हमें परस्तिश करनी चाहिये। जो जंग वह लड़ने जा रहे हैं उसमें हमें पूरी मदद करनी चाहिये।"

'तो तू भी मदद करेगी ?"

'हाँ, क्यों नहीं ? ज़रूर करूँगी।'

'क्या मदद करेगी ?' हाथ धोते धोते बूढ़े ने पूछा।

'जो भी कर सकूँगी।'

'अच्छा अब ज़रा तम्बाकू पिला दे। पहिले तू यही मदद कर। मैं भी इस जंग में हिस्सा लेने जा रहा हूँ, मैं भी फ़रिश्ता हूँ इसलिये तुझे मेरी मदद करनी चाहिये। क्यों रे ज़ूली ?'

ज़ुलेख़ा झेंप कर भाग गई और चिलम भर लाई। हुक्का आगे बढ़ाते हुये बोली, 'और फ़रिश्ते के लड़के बच्चे भी तो फ़रिश्ते ही होते होंगे ?'

दीनू हँस पड़ा खिलखिला कर। ज़ुलेख़ा खाना खाने चली गई। हुक्का पीते पीते बूढ़ा फिर गंभीर हो गया।

'ज़ुलेख़ा अब समझदार हो गई है। अब निरी लड़की ही नहीं रही' उसने सोचा 'उसका निकाह हो जाता तो कितना अच्छा था !' लेकिन उसे ध्यान आया कि यह मौक़ा निकाह का नहीं है। दो ही चार दिन में गाँव वालों में हरकत आ जायेगी। वह सब दूसरी बातें न सोच इस आने वाली जंग की बात सोचेंगे, उसकी तैयारियाँ करेंगे। ऐसे मौक़े पर शादी ब्याह का चर्चा किसी को जँचेगा नहीं। कोई

मेरी सुनेगा नहीं, सब कहेंगे, 'इस मौक़े पर यह बे सुरा राग मत अलापो। डंके की चोट और रसनचौकी शहनाई का कोई मेल नहीं।' फिर ज़ूली का क्या होगा ? अभी तो कोई बात नहीं, जंग छिड़ जाने पर कौन किसकी निगहबानी करेगा ? कौन किसकी देख रेख रखेगा।'

बूढ़ा उदास होने लगा।

ज़ुलेख़ा खाना खाकर वापस आ गई। उसने सोचा था चलकर बाबा से ख़ूब बातें करूँगी। अब उसका मन उछल रहा था। वह ख़ुश थी। उसकी उदासी दूर हो चुकी थी। उसे अपनी रगों में एक नये जोश और नई ज़िन्दगी का एहसास हो रहा था। खाना खाते वक़्त उसने यशवन्त का ध्यान कर, उसी की क़सम खाई थी कि 'मैं तुम्हारे क़ाबिल बनने की कोशिश करूँगी। तुमने मुझसे पूछना ठीक नहीं समझा और फ़ैसला कर लिया। लेकिन तुमने जो कुछ किया, ठीक किया। मैं पीछे पीछे चलूँगी। मैं तुम्हारे पाक क़दमों की क़सम खाकर अपनी मोहब्बत की क़सम खाकर कहती हूँ कि मैं तुम्हारी राह की रोड़ा न बनूँगी, अपनी ताक़त और हिम्मत के भरोसे तुम्हारे पीछे पीछे चलूँगी, मर जाना बेहतर समझूँगी लेकिन दग़ा न करूँगी, साथ न छोड़ूँगी।' और उसके बाद अब ज़ुलेख़ा स्वस्थ और सुदृढ़ हो गई थी। उसके सीने पर रखा पत्थर का बोझ उतरता सा मालूम पड़ने लगा था। लगा कि वह ज़रा खुल कर साँस ले पा रही है। उसका गला अब घुट नहीं रहा है। अब्बा के पास आकर बोली, 'सो रहे हैं क्या अब्बा ?'

'नहीं बेटी, यों ही पड़ा पड़ा सोच रहा था।'

'क्या सोच रहे थे ?'

'मैं बहुत ख़ुश हूँ ज़ूली। बहुत दिनों चरख़ा करघा चलाया दूसरों का तन ढंका, ख़ुद नंगा रहा। कम्पनी ने यह कारोबार ख़त्म कर दिया तो भूखों भी मरने लगा। तिलमिला कर, छटपटा कर रह गया। सोचता था जिन्होंने मेरी रोज़ी पर हमला किया है, जो हमारी

जान के दुश्मन रहे हैं, उनसे बदला लिये बग़ैर ही मर जाऊँगा। मुझे इसका अफ़सोस था। लेकिन अब अफ़सोस नहीं है। अगर एक फिरंगी की भी जान ले सका तो समझूँगा मेरी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा मक़सद पूरा हुआ। इन्तक़ाम, बदला और कुछ नहीं ज़ूली।' बूढ़ा हँसा बड़े ज़ोरों से हँसा। ऐसी हँसी वह उसके पहिले कभी नहीं हँसा था, एक सूखी कड़कड़ाती हँसी, जिसमें स्नेह नहीं,कोमलता नहीं, निर्ममता, क्रूरता, प्रतिहिंसा के लिये दृढ़ता थी, मृत्यु पर विजयी होने का दम्भ था, जीवन की सबसे अधिक अपूर्ण मनोकामना की पूर्ति की आशा थी; इस उद्दण्डता पूर्ण रुखी हँसी के लिये जिसे सुनने का पहिला मौक़ा था ज़ुलेख़ा को, वह तैयार न थी। वह काँप गई। उसकी आँखों ने देखा 'बूढ़ा चौड़ी खीसें निकाले, ख़ाली, खुली आँखों से, मौन छप्पर की ओर देख रहा है। ज़ुलेख़ा सहम गई। भयभीत हो वह अब्बा से कुछ दूर जा खड़ी हो गई।

दीनमोहम्मद कुछ देर इसी मुद्रा में बैठा रहा। फिर बड़बड़ाने लगा. 'यह चर्ख़ा करघा! ओह, अब इनका क्या होगा? इन्हें मैं तोड़ डालूँगा। अब इनका क्या होगा? अब ये मेरे किस काम आयेंगे। जिस तरह मेरी-हड्डियाँ कमज़ोर हो गई हैं, मेरा बदन टूट गया है लेकिन फिर भी बदले के नाम से उसमें दम आ जायेगा, एक न एक फिरंगी को वह ले ही डूब मरेगा, उसी तरह, उसी तरह मेरे चर्ख़े का तकुआ, उसकी तीलियाँ भी किसी न किसी काम आयेंगी। टूटे बदन और दीमक लगे करघे से क्या मोह! ओह, मैं इन्हें तोड़ डालूँगा। इनका काठ नहीं लोहा काम आयेगा। ज़माना लोहे का है, काठ का नहीं। लोहा, चमचमाता लोहा अब हमारी क़िस्मत का फ़ैसला करेगा।' और एक बार फिर बूढ़ा हँसा ज़ोर से, ठहाका मार कर।

ज़ुलेख़ा चीख़ पड़ी। उसे ग़श आगया, वह ज़मीन पर आगई। धमाके से बूढ़े का ध्यान उधर खिंचा। उसने देखा उसकी ज़ूली

ज़मीन पर बेहोश पड़ी है। वह उठा और दौड़ पड़ा। गोद में ज़ुलेख़ा को उठा, उसके मुँह पर पानी के छींटे दिये! धीरे धीरे ज़ुलेख़ा की आँखें खुलीं। उसने देखा अब वह भयानक, ख़ूँख़ार, इन्तक़ाम के पुतले दीनमोहम्मद जुलाहा नहीं कोमल हृदय और नम पलकों वाले अब्बा की गोद में है। दीनू उसके सिर पर हाथ फेरता रहा और उसकी आँखों से आँसू टपकते रहे टप्-टप, टप्-टप्!

"तुम रो रहे हो अब्बा!"

"तू डर गई बेटी!"

दोनों चुप थे और बहुत देर तक चुप रहे।

रात ज़्यादा हो गई थी। दीनू ने दुलार से कहा, 'अब तू सो जा बेटी। चारपाई खींच कर मेरे पास कर ले, वहाँ तू डरेगी।"

"फिर तो तुम वैसी शक्ल नहीं बनाओगे अब्बा! फिर तो वैसी हँसी नहीं हँसोगे?"

'नहीं मेरी रानी मुन्नी, नहीं! तू आराम से सो जा!"

—: o :—

# ६

दिन बीतते देर नहीं लगती। युसुफ़ जाह बहादुर, लाल यशवन्त सिंह, ठाकुर भगवान सिंह और सरदार राम उजागर सिंह ने पन्द्रह दिनों में ही पूरे ख़ित्ते का दौरा ख़त्म कर दिया। उधोपूर का समाचार सबसे अधिक आशापूर्ण था। वहाँ के पठानों और चौहानों ने साढ़े सात सौ नौजवानो को भर्ती कर लिया था और उनकी क़वायद भी शुरू कर दी थी। उनके पास दो तोपचियाँ थीं, सवा सौ अच्छे घोड़े थे, तलवार भाले आदि से सभी लैस थे। रसद पहुँचाने, ले जाने ले आने का भी पूरा प्रबन्ध कर लिया था। नदी तट पर नावें बँधी थीं और अपने लड़ने के मैदान को खाइयों से अच्छी तरह सुरक्षित कर लिया था। सबसे पहिला मोर्चा उन्हीं को सँभालना था। अगर वह लोग तीन रोज़ भी फिरंगियों को रोक सके तो बाक़ी जगहों की फ़ौजें पहुँच कर उन्हें खदेड़ देंगी।

ठाकुर राम उजागर सिंह बूढ़े थे लेकिन दिल के मज़बूत और युद्ध विद्या में विशारद। घबराना, असमंजस में पड़ जाना, अनिश्चित रहना वह नहीं जानते थे। इसलिये उधोपूर पहुंचकर उन्होंने सारा इन्तज़ाम अपनी आँखों से देखा। सिपाहियों की क़वायद देखी, रसद पहुंचाने, हथियार ढोने के रास्ते देखे, गाड़ियाँ तक अच्छी तरह देखी और सारा इन्तज़ाम देख पूर्णतया सन्तुष्ट होकर लौटे। उनका कहना था कि उधोपूर वाले जीवट के आदमी हैं, वे जम के लड़ेंगे, इसमें सन्देह नहीं। उनका संगठन बिल्कुल पक्का है।

युसुफ़ जाह उत्तर के मझगवाँ में गये थे। वह दूसरा क़िला था जहाँ झाराझार पठान रहते थे। ये लोग वैसे ही मशहूर लड़ाकू थे। कोई न मिले तो आपस ही में भिड़ जाते थे। इनके यहाँ फ़ौजदारी रोज़मर्रा की चीज़ थी। कई बार बीच बिचाव करने ख़ुद युसुफ़ को जाना पड़ा था वहाँ। चार दिन पहिले वह लोग अपने गाँव के सरहद के पास ऊँचाडीक पर जुटे थे। वहाँ उन्होंने तलवार चूमी, क़ुरान शरीफ़ हाथ में ली और क़सम खाई चाहे जो हो जाये, हम पीछे नहीं हटेंगे। एक एक सिपाही ढेर हो जायेगा तभी फिरंगी सरहद के भीतर क़दम रख सकेंगे। युसुफ़ के सामने यह सब हुआ। युसुफ़ का दिल बढ़ा और उसने वायदा कर दिया रंगपूर का बच्चा बच्चा कट जायेगा लेकिन फिरंगी वहाँ धसने नहीं पायेंगे। रंगपूर के रहने वाले आपके साथ गद्दारी नहीं करेंगे। 'अल्ला हो अकबर' के नारों के बीच क़सम लेने की रस्म अदा हुई। बाद में तलवार, भाले और लाठियों के झूठे युद्ध दिखाये गये, घोड़ सवारी की कला का प्रदर्शन हुआ, मोर्चे बन्दी, हमले के तरीक़े, आगे बढ़ने और पीछे हटने के सुव्यवस्थित ढंग सबकी नुमायश हुई। युसुफ़ बहुत उत्साहित और सन्तुष्ट हुआ। लौटा तो रंगपूर का रंग और भी ज़्यादा चोखा रहे यही सोचता आया।

समस्तीपूर में ठाकुर भगवान सिंह और लाल यशवन्तसिंह का स्वागत बहुत शान्दार हुआ। गाँव में सहभोज हुआ जिसमें नाच मुजरे का भी इन्तज़ाम था। खाना पीना गाना बजाना होने के बाद उन्होंने स्थानीय फ़ौज का निरीक्षण किया। हर घर से एक तलवार कर की तरह लिया गया था। 'एक सरदार, एक तलवार' का नारा दिया था वहाँ के लोगों ने। साढ़े चार सौ नौजवान लड़ाके और इतनी ही तलवारें जमा हो गईं। यहाँ के राठौर अपनी एकता और संगठन के लिये मशहूर थे। गाँव के चौपाल पर सार्वजनिक मसलों पर ग़ौर करने के लिए सभी जुट जाते थे। वहीं किसी को सरपंच बना लिया जाता और सबकी राय से प्रस्ताव पास किये जाते। बहुत दिनों से वहाँ पर

ऐसा ही होता चला आया था। चूँकि हर मसले पर समस्त जनता मिलकर राय करती और सबकी राय से ही कोई निश्चय होता, इसलिये उस गाँव का नाम समस्तीपूर पड़ गया था।

सरदार मंगलसिंह की चिट्ठी पहुंचने पर वहाँ एक आम सभा चौपाल पर हुई थी और यह निश्चय हुआ था कि संघर्ष में आस पास के लोगों के साथ मिलकर सरदार मंगलसिंह को सहायता दी जाय। जब यशवन्त और भगवान सिंह वहाँ पहुँचे तो उनकी तैयारी आधी समाप्त हो चुकी थी। थोड़ा बहुत इन्तज़ाम बाक़ी रह गया था, जिसे वे दस पन्द्रह दिन में पूरा कर लेने की आशा रखते थे। वहाँ के लोग यह सोचते थे कि सब तैयारियों के अलावा केवल क़वायद के लिये उन्हें महीने भर का समय मिल जायेगा। चाँदमारी, निशाने बाजी, घोड़ दौड़ आदि शुरू हो गये थे। युद्ध का वातावरण तैयार होने लगा था। इसलिये यशवन्तसिंह और ठाकुर साहब को कुछ भी कोशिश नहीं करनी पड़ी। जब ये लौटने लगे तो रास्ते में रंगपूर की बातें होती रहीं। सोचा कहीं रंगपूर ही न सबसे पीछे रह जाय। लेकिन रंगपूर के पुराने इतिहास और प्राचीन परम्परा पर उन्हें भरोसा था, इसलिये हतोत्साह होने का कोई कारण उन्हें दिखाई न देता था।

सब लोग जब एकत्र हुये और सबने ने एक दूसरे को अपने अनुभव बताये तो सबको आशा बँधने लगी कि फिरंगियों का सामना सफलता पूर्वक किया जा सकेगा। यह भी निश्चय हुआ कि अगली पूर्णिमा को युसुफ़ जाह बहादुर के बँगले पर सब जगहों के प्रतिनिधि जमा हों। वह अपने यहाँ से इस बात का अधिकार लेकर आवें कि उस सभा में जो भी निश्चय हों उसमें वे अपने गाँव की ओर से 'हाँ' अथवा 'ना' कह सकें। सबके अन्त में स्वयं रंगपुर का सवाल आया। सरदार राम उजागरसिंह सोचते थे कि अगले कुछ दिन जुटकर अपने गाँव का संगठन किया जाय। गाँव बहुत बड़ा है इसलिए हज़ार सिपाहियों का मिलना मुश्किल न होगा। सब लोग मदद करेंगे

तो किसी भी चीज़ के लिये दिक़्क़त न होगी और सारा इन्तज़ाम आसानी से हो जायेगा। गाँव को संगठित करने की ज़िम्मेदारी सरदार राम उजागरसिंह को दी गई। सर्व प्रिय और सर्वमान्य होने के कारण कोई उनकी बात को टाल नहीं सकता था। सरदार साहब ने यह भार सहर्ष स्वीकार कर लिया।

यशवन्त को इससे सन्तोष हुआ। लाल साहब अगर किसी के बस में आ सकते थे तो वह सरदार साहब ही थे। यशवन्त ने जब अपने पिता का चर्चा किया और उनके दिमाग़ का हाल बताया तो लोग थोड़े से चिन्तित हुये। यशवन्त का तो यहाँ तक कहना था कि ये इस युद्ध में, सम्भव है, बिल्कुल साथ न दें बल्कि इसे अपना व्यक्तिगत ग़ुस्सा निकालने का साधन बनावें। लेकिय जब सरदार साहब ने आश्वसन दिया कि ऐसा कदापि नहीं हो सकता, लाल साहब कभी ग़द्दारी नहीं कर सकते तो यशवन्त चुप हो गया। यद्यपि अपने पिता से वह बिल्कुल निराश था परन्तु सरदार साहब के सामने जबाँदराज़ी करना अनुचित समझ वह चुप ही रहा।

बैठक समाप्त हुई तो यशवन्त और युसुफ़ साथ ही चले। रास्ते में दोनों मित्रों में बातें होती रहीं। प्रणय और प्रलय का सजीव सम्बन्ध है। जो मौत को गलबहियाँ डाल कर हृदय से लगा सकता है वह प्रणयालिंगन भी कर सकता है। प्रेम करने वाले और प्राण देने वालों की छाती चौड़ी होती है। तरुण हृदय मृत्यु प्रिया का स्वागत उसी उल्लास और विह्वलता से कर सकता है जिससे वह अपनी प्राणप्यारी प्रेयसी का करता है। विषपायी ही अमृतपान का सर्वोपम आनन्द ले सकते हैं। तरुण नाम सार्थक करना हो तो नीलकण्ठ बनना ही पड़ेगा। यश और युसुफ़ इसी का चर्चा करते चले आ रहे थे।

"अभी कितने दिनों की बात है। तीन हफ्ते भी नहीं हुये जब कि हम बाग़ में झूला देखने गये थे। याद है युसुफ़! तरुणियों का पेंगें

मारना और पंचमस्वर में कोकिल कण्ठियों का मधुर मधुर कजली गाना। कभी कभी दिल में दर्द उठने लगता है। सोचता हूँ, मनुष्य का हृदय भी कितना दुर्बल होता है। लेकिन समय पड़ने पर वही वज्र की तरह कठोर हो जाता है। कहा भी तो गया है 'कुलिश-कोमल' होना मानव हृदय का सच्चा गुण है। यही कुलिश-कोमलता हमें मनुष्य बनाती है, यही हमें संमय रखने और स्वस्थ मानसिक अवस्था बनाये रखने के लिये उत्साहित करती है, राह दिखाती है। केवल कोमलता हमसे हमारा पुरुषत्व और पुसंत्व छीन लेगी, कोरी कुलिशता हमें दानव बना देगी। दोनों का समन्वय और संतुलन हमें मानव बनाये रखते हैं। ज़ुलेख़ा और ज्योति के चरणों में लोट लोट जाने वाले इस हृदय में फिरंगियों के प्रति कितना विद्वेष, कितनी घृणा भरी है!" यशवन्त ने आगे कहा, "मैं अक्सर सोचता हूँ आख़िर हमने यकायक क्या सोच उन दोनों लड़कियों को वचन दे दिया! ज्योति अथवा ज़ुलेख़ा के कौन से अरमान हम दोनों से पूरे हुये या पूरे होने की आशा ही है! एक प्यार भरा चुम्बन, गर्म गर्म स्नेह सिक्त; एक एकाकार कर देने वाला प्रणयालिंगन कुछ देर तक; रह रह फूल उठने वाले सीनों का एक दूसरे को दबाना कस के, ज़ोर से, कुछ तो नहीं हुआ! और अब डंके की चोटों की प्रतिध्वनियाँ इधर से, उधर से, नीचे ऊपर चारों ओर से आ आकर, कानों में गूंज रही हैं। अब प्रणय का समय कहाँ? मनोदशा कहाँ? सम्भावना कहाँ? तो क्या हमारा मरुभूमि जैसा सूखा निष्प्राण जीवन निस पशुओं के आखेट का मैदान ही बनकर रह जायेगा? उस पर हरियाली की चादर नहीं बिछेगी!"

"यशवन्त! तुम्हारी बँहक मुझे अच्छी नहीं लग रही है। यह कौन सा मौक़ा चुना तुमने? बैठक से लौटे हैं हम, हमारा फ़र्ज़ था कि अपने गाँव को संगठित करने, मज़बूत बनाने की बातें सोचते। ऐसा करना तो दर रहा, पागलों की तरह तुम न जाने क्या आयँ,

बाँय, शाँय बकने लगे। सब जगह की ख़बरें मिल चुकीं। सब की तैयारियों का पता चल गया। लेकिन हमारे रंगपूर की हालत वैसी ही अब तक है। सोचो यहाँ क्या किया जाय! यहाँ का इन्तज़ाम कैसे ठीक हो?" युसुफ़ ने चिढ़कर फिर समझाते हुये कहा।

"सरदार राम उजागर सिंह के हाथों में इन्तज़ाम सौंपने के बाद, मैं तो नहीं समझता कि ऐसी परेशानी की क्या बात रह जाती है? मालूम है जो इन्तज़ाम और संगठन हम तुम सात दिन में नहीं कर सकते वह सात घण्टों में कर लेंगे।"

"अच्छा, इसके माने यह हुये कि हमें तुम्हें खुली छुट्टी मिल गई! अब कुछ करना बाक़ी नहीं है, क्यों?"

"यार, तंग नहीं करो इस वक़्त। मैं यह सब कुछ नहीं कह रहा हूँ। थोड़ी सी शान्ति तो चाहिये मन को। चिल चलाती धूप से जल भुन जाने के बाद साये की तलाश क्या अस्वाभाविक है? सोचो, इधर कितने दिनों से हम रातों दिन लड़ाई लड़ाई करते रहे हैं। लेकिन हमारा दिल कोई लोहा पत्थर तो है नहीं। एक बार जुलेख़ा को देख भी नहीं पाया उस दिन से। तुम जाने कैसे आदमी वाक़य हुये हो। तुम्हें ज्योति की याद ही नहीं आती! भई, सच्ची बात तो यह है कि इस हालत में भी मुझे इन लोगों की याद बनी ही रहती है। इसे तुम बुरा मानों या भला, लेकिन मैंने सच्ची बात कह दी!"

युसुफ़ चुप हो गया। वह यशवन्त के भावुक स्वभाव को जानता था। उसे यह भी पता था कि अभी इसी क्षण यशवन्त पत्थर की तरह कड़ा हो सकता है। इस समय भावुकता की तरल धारा में बह रहा है तो बहने दो। "अच्छा, तब क्या किया जाय, इन से मिलने के लिये?"

"अब तुमने ढंग की बात कही?"

"हाँ, तो बताओ, इनसे कैसे मुलाक़ात हो सकती है?"

"चले चलो इनके घर ही। हर्ज क्या है।"

"हर्ज तो कुछ नहीं है।"

"तो कब चलोगे ?"

"देखा जायेगा यार, ऐसी जल्दी क्या है ?"

"फिर वही ढंग ! युसुफ़, यार तुम भी एक ही झक्की हो। मेरा मतलब यह है कि आख़िर उनके कानों में भी सारी ख़बरें पड़ती होंगी। वह भी उत्सुक और चिन्तित होंगी। क्यों न चल कर उनसे मिल आया जाय ? थोड़ी देर की बात है।"

"अच्छी बात है चलूँगा।"

निश्चय हुआ कि बँगले पर पहुंच कुछ नाश्ता पानी करने के बाद दोनों जायेंगे ज़ुलेख़ा और ज्योतिर्मयी से मिलने। बँगले पर पहुँचे ही थे कि देखा दीनू शेख़ डग बढ़ाते चले आ रहे हैं। युसुफ़ ने आगे बढ़कर पूछा, "कहो दीनूशेख़, कैसे चले ? ख़ैरियत तो है।"

"हाँ भैया सब ठीक है। ज़रा लाल यशवन्त सिंह से मिलने आया था। ज़ूली उन्हें याद कर रही है। जब से यह लड़ाई झगड़े की ख़बर फैली है तब से उसे जाने क्या हो गया। उदास रहने लगी है, चेहरा सूखता जा रहा है। इन पन्द्रह बीस दिनों में ही जाने कैसी हो गई। जैसे बदन में दाना ही नहीं लगता। पहिले की चूनी भूसी खाकर ही वह मोटी झोटी हो गई थी !"

"तबीयत तो ठीक है। बुख़ार खाँसी वग़ैरह तो नहीं हैं !"

"जी नहीं, खाना कम खाती है। गुमसुम बैठी रहती है। कुछ समझ में नहीं आता क्या बात हैं। हाँ, जब लड़ाई की बात करो तो ज़रूर वह ख़ुश नज़र आने लगती है। उसकी आँखों में चमक आ जाती है। लेकिन कुछ ही देर में उसका चेहरा फिर मलीन हो जाता है। चल सकोगे भैया ?"

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं चल सकता। ज़रूर चल सकता हूँ।"

"यशवन्त नाश्ता करके तुम देख आओ ज़ुलेख़ा को।" युसुफ़ ने कहा। "और बाबा तुम यहीं बैठो। तुमसे बहुत बातें करनी हैं। तुम बुज़ुर्ग हो, ज़माना देखा है तुमने। बताओ, क्या सोचते हो, रंगपूर वाले कुछ कर गुज़रेंगे ?" यशवन्त मुँह धोने चला गया। युसुफ़ और दीनमोहम्मद बैठ गये। दोनों में घुल मिलकर बातें होने लगीं।

हाथ मुँह धो नाश्ता कर यशवन्त चला गया। युसुफ़ ने दीनू से बातें जारी रखीं। युसुफ़ को इस समय एक ही धुन थी वह यह कि जल्दी से जल्दी गाँव के सभी पुरखों के लोगों को इकट्ठा किया जाय। सरदार राम उजागरसिंह बेशक सारा काम देख सकते थे, लेकिन यही सोचकर बैठ रहना उसे अनुचित जान पड़ा, इसीलिये उसने दीनू से कहा, "माना कि सब इन्तजाम हो जायेगा, लेकिन सिर्फ़ लड़ाई ही तो एक चीज़ नहीं है। उसके साथ साथ सारे गाँव की औरतों, बच्चों, बूढ़ों की भी देख रेख करनी होगी, देखना पड़ेगा कि किसके घर में अनाज और दूसरे खाने के सामन हैं, किसके घर में नहीं है। जानवरों के लिए चारे का भी इन्तज़ाम करना पड़ेगा। गाँव की सारी बैल-गाड़ियाँ, एक्कियाँ, ठीक करानी पड़ेंगी। मल्लाहों को सहेजना पड़ेगा कि वे अपनी नावें हरदम, हर घड़ी तैयार रखें। न मालूम किस वक़्त क्या ज़रूरत पड़ जाय ? और, सबसे बड़ी बात यह कि फ़ौज की सभी टुकड़ियों में रिश्ता बनाये रखने के लिये और फ़ौज के साथ गाँव वालों का भी रिश्ता क़ायम रखने के लिये ज़रूरत पड़ेगी चुस्त, चालाक, तेज़ गुमाश्तों की। रात के पहरे के लिये, घायल सिपाहितों की मरहम पट्टी के लिये और इसी तरह के बीसों कामों के लिये आदमियों की ज़रूरत पड़ेगी। यह सब हमें करना है दीनू !"

दीनमोहम्मद चुपचाप सुनता रहा। उसे यह देखकर ख़ुशी हो रही थी कि युसुफ़ जाह इस तरह तशरीह के साथ अगले इन्तज़ाम के बारे में सोच रहे हैं। उसने कहा, "हुज़ूर की नज़र ठीक जगहों पर पहुँची है। छोटी छोटी बातों का ख़याल न रखा जाय तो बड़ी बड़ी

बातों में गड़बड़ी हो जाती है।' प्रशंसात्मक मुद्रा में दीनू ने ग़ौर से युसुफ़ की ओर देखा। "मेरे लिये क्या हुक्म होता है सरकार? आख़िर यह पुरानी हड्डियाँ किस दिन काम आयेंगी? मेरे लायक भी ख़िदमत बता दें तो मेहरबानी हो हो।"

"तुम्हें मैं बताऊँ दीनू शेख़! काँटों में मत घसीटो मुझे। मैं तुमसे रहनुमाई लेना चाहता हूँ। तुमने ज़माना देखा है। पिछली लड़ाइयों में हिस्सा लिया है। तुमको मैं क्या बता सकता हूँ।'

"मगर पहिल जैसी ताक़त जो नहीं रह गई है। हथियार उठा नहीं सकता। मोर्चे पर डट कर वार भी नहीं कर सकता। आपही बताइये मैं किस लायक़ हूँ।"

"दीनू, मोर्चे पर डटने वाले ही सूरमा नहीं होते। माना कि तुम हथियार नहीं उठा सकते। लेकिन हथियार उठाने वालों के पेट में चारा तो डाल ही सकते हो। यही क्या कम काम है। गुमाश्तों के सरग़ना बन कर सब तरफ़ की ख़बरें इकट्ठी कर वक़्त वक़्त पर पहुँचा सकते हो। तुम बूढ़े हो। तुम्हारे ऊपर कोई शक भी नहीं करेगा। आसानी से फ़क़ीर बन सकते हो, अपनी झोली में इन्क़लाब की चिनगारियाँ लिये चारों तरफ़ जा सकते हो, उन्हें सब जगह बिखेर सकते हो, आग लगवा सकते हो, आफ़त बर्पा कर सकते हो। लगातार चारों तरफ़ की ख़बरें मिलते रहने से हमारी फ़ौजों की हिम्मत बढ़ेगी, हमारा मोर्चा ढंग से चलता रहेगा। दीनू, तुम हमारे सिपाहियों के पयामबर बनोगे, घरकी ख़बरें, बीवी बच्चों की ख़बरें उनतक पहुँचाओगे, उन्हें ख़ुशी राहत, उम्मीद, ज़िन्दगी बख़शोगे। दीनू, यह काम सबके का ही नहीं है। यह बहुत बड़ा काम है। इसे सब नहीं कर सकते।"

दीन मोहम्मद ने भी अपने लिये इसी तरह का काम सोचा था। युसुफ़ जाह ने भी जब उसका समर्थन किया तो उसे बड़ी ख़ुशी हुई। उसे

लगा कि उसका इतने दिनों फटे हाल रह कर भी ज़िन्दा रहना बेकार नहीं गया। वह कृतकृत्य हो गया।

"आख़िरी दिनों में मैं अपनों के काम आ सकूँ और मेरी मिट्टी भाई बिरादरी के काम आ जाय इससे बढ़कर ख़ुशी की और कौन बात हो सकती है! शाहज़ादे! ख़ुदा को हज़ार शुक्र कि मुझे अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी दिनों में ऐसा सुनहला मौक़ा मिला। अब मैं सुख से क़ब्र में जा सकूँगा।"

'हाँ, एक बात और कहनी थी। मैंने पिछली बार भी कहा था, लेकिन तुमने ध्यान नहीं दिया। तुम हमेशा ज़ुलेख़ा की फ़िक्र किया करते हो। गुज़ारिश यह है कि तुम उसकी फ़िक्र छोड़ दो। ख़ुदा उसका कोई न कोई इन्तज़ाम कर ही देगा। जब तक लाल यशवन्त सिंह ज़िन्दा हैं, जब तक मैं यहाँ हूँ, उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। दीनू शेख़ तुम इत्मीनान रखो।" युसुफ़ ने कहा।

कृतज्ञ दीन मोहम्मद आगे कुछ बोल न सका। वह सोचने लगा, कितने दरियादिल, कितने नेक तबीयत हैं ये लोग "

"आओ चलो तुम्हें बाग़ की सैर करा लायें। शाम होते होते चले जाना।" दीनू के कन्धे पर स्नेह से हाथ रखते हुये युसुफ़ ने कहा और दोनों बाग़ की ओर चले गये।

× × ×

यशवन्त होले होले ज़ुलेख़ा की झोपड़ी की ओर बढ़ा चला गया। उसके मन में उत्कण्ठा थी, उल्लास था, भय और असमंजस भी था। कभी कभी वह झिझकता 'जाऊँ कि जाऊँ' लेकिन बरबस उसके पाँव बढ़ते ही जाते थे और वह झोपड़ी के पास पहुँच गया।

अब उसके पाँव धीमे पड़ने लगे थे। दिल की धड़कन बढ़ गई थी। आवेश पूर्ण कुतूहल और असमंजस के भँवर में जैसे वह फँस

गया था। निकलने का कोई रास्ता न था। थोड़ा और नज़दीक पहुँचा, देखा कमर पर भरी गगरी धरे थम-थम, रुक-रुककर ज़ुलेख़ा चली आ रही है। साड़ी पर पानी के छींटे थे। गगरी छलक छलक पड़ती थी। सिर के अधखुले बाल जबरन् उसके मुँह पर आ जाते और वह हटा देती। वह चली आ रही थी मंथर गति से, धीरे धीरे!

यशवन्त के पाँव आगे नहीं बढ़ सके। उस निखरे यौवन की सरस सहज मूर्ति ज़ुलेख़ा को वह अपलक देखता ही रह गया। बाग़ की तरह आज सजावट नहीं थी। बाल बिखरे थे और बदन को, उसकी लाज को एक फटा दुपट्टा ढाँके हुआ था। लेकिन इस दीन विपन्न दशा में भी उसकी भरी जवानी, उसका गदराया यौवन चीथड़ों को फाड़ जैसे बाहर आ जाना चाहता था। मंत्र मुग्ध सा यशवन्त उसे निहारता रह गया।

ज़ुलेख़ा क्या जानती थी कि दो विस्फारित अपलक आँखें उसकी ओर एक टक निहार रही हैं। सामना हुआ तो वह शर्मा गई, घबरा गई। इतनी घबरा गई कि उसके पाँव बढ़ने से इन्कार करने लगे। दिल बहुत ज़ोर से धड़कने लगा। आँखों के आगे अंधेरा छाने लगा। अकस्मात यशवन्त से इस प्रकार उसका मिलन उसके शरीर के अंग अंग को धड़काने के लिये, रोम रोम को पुलकाने के लिये काफ़ी था। लेकिन लजीला स्वभाव, लजीली उम्र, वह क्या करे! कोशिश की होश संभालने की और सट से घर में घुस गई।

भीतर जा उसने होश संभाला, तबीयत ठीक की और अपने को स्वस्थ करते हुये फिर आई। यशवन्त का सामना हुआ। वह चुपचाप उसी स्थान पर खड़ा मुस्करा रहा था। धीमी आवाज़ में ज़ुलेख़ा ने बुलाया, "आइये न, बैठिये। आप वहाँ क्यों खड़े हैं?"

यशवन्त आगे बढ़ा, कुछ और आगे बढ़ा और झोपड़ी के दरवाज़े पर पहुँच गया। "अब हुक्म!" उसने पूछा।

'अन्दर आइये, चारपाई पर बैठिये।'

यशवन्त घर में चला गया। सामने बूढ़े दीनमोहम्मद की चारपाई बिछी थी, चीथड़ों से ढंकी। यशवन्त ठाठ से जमकर बैठ गया। लेकिन ज़ुलेख़ा काँप गई। कहाँ लाल यशवन्त सिंह के चमकते हुये साफ़ कपड़े, कहाँ वह चीथड़ों से ढँकी चारपाई। यश बैठा उस पर तो जैसे उसे चोट लगी।

'क्या करूँ? आपके लायक़ बिस्तर ही नहीं हमारे पास,' आर्त स्वर में ज़ुलेख़ा बोली।

'ठीक तो है, इसमें हुआ क्या है? कैसी हो। तबीयत तो ठीक है?'

'जी हाँ, ज़िन्दा हूँ। आप तो उस दिन के बाद आये ही नहीं इधर!' रुआंसी ज़ुलेख़ा बोली।

'हाँ, माफ़ी चाहता हूँ। काम बहुत था। आस पास के गाँवों में दौरा करना था। तुमने सुना ही होगा, फिरंगियों से लड़ाई होनी वाली है। उसकी तैयारी हो रही है। दूसरे गाँवों के लोग सारा इन्तज़ाम कर चुके हैं। अभी हम ही पिछड़े हैं। अगर जुटकर तैयारी न होगी तो हम पीछे रह जायेंगे, वक़्त पर कुछ भी नहीं कर सकेंगे। इसीलिये वक़्त नहीं मिलता। आज बड़ी मुश्किल से वक़्त निकाल सका हूँ। जी नहीं माना तो चला आया।'

'आपकी क्या ख़ातिर करूँ? आपके लायक़ तो मेरी झोपड़ी में कुछ भी नहीं है।"

'तुम ख़ुद मेरी ख़ातिर हो। मुझे और क्या चाहिये। तुम्हें पाने के बाद मुझे और क्या पाना बाक़ी रह जाता है ज़ुलेख़ा?' स्नेह से यशवन्त ने ज़ुलेख़ा की ओर देखा। उसकी अलसाई मादक आँखें सलोनी ज़ुलेख़ा के रूप लावण्य पर मुग्ध हो मुँदी जा रही थीं।

ज़ुलेखा लाज के मारे ख़ुद अपने में ही सिकुड़ी जा रही थी। यशवन्त की प्यारी प्यारी आँखें उसे देख रही थीं और वह अलस, और रोमान्चित हो ठगी सी खड़ी रही।

"कुछ बोलो ज़ूली, इधर आओ।"

"क्या बोलूँ?"

"कुछ।"

"कुछ समझ में ही नहीं आता।"

"तुम्हें मेरा यहाँ, इस तरह, इस समय आना कैसा लगा?"

ज़ुलेखा चुप रही।

"बुरा लगा क्या?"

'नहीं!' ज़ुलेखा के मुँह से निकल गया।

"अच्छा लगा?"

"हाँ!"

"इधर आओ।"

ज़ुलेखा और पीछे खिसक गई।

'मेरे पास आओ, मेरी बात मानो।"

ज़ुलेखा चुप रही।

"नहीं आओगी?"

ज़ुलेखा फिर भी चुप रही।

"क्या चाहती हो, चला जाऊँ?"

'नहीं।'

"तब आओ मेरे पास।"

"कैसे आऊँ?"

"क्यों?"

"लाज लगती है।"

यशवन्त चुप रह गया। लगा कितनी भोली लड़की है! नादान है, मासूम!

'एक गिलास पानी पिला सकती हो ?' यशवन्त ने पूछा।

ज़ुलेखा, साफ़ गिलास में पानी भर लाई। हाथ बढ़ाकर दूर ही से कहा 'लीजिये।'

'नज़दीक आकर दो।'

ज़ुलेखा की समझ में नहीं आया क्या करे।

'यहाँ आकर पानी दो'

ज़ुलेखा बढ़ी लेकिन ठिठक कर रह गई।

'तो मैं पानी नहीं पीता'

यन्त्रचालित सी ज़ुलेखा आगे बढ़ आई।

यशवन्त ने पानी का गिलास लिया, पानी पिया और जब ज़ुलेखा ने गिलास वापस लेने के लिये हाथ बढ़ाया तो उसने गिलास रखने के बजाय अपने गर्म-गर्म ओठ धर दिये। ज़ुलेखा ने झट हाथ पीछे खींच लिया। वह चौंक गई।

"क्यों, डर गईं क्या ?' मुस्कराते हुये यशवन्त ने पूछा।

'हाँ, नहीं,' ज़ुलेखा जाने क्या कह गई ?

'अच्छा, अब जाता हूँ। बहुत थका हुआ हूँ। फिर आऊँगा कभी। मेरा यह बोसा याद रखना।'

ज़ुलेखा कुछ न बोल सकी। यशवन्त उठा और बाहर चलने की मुद्रा में बोला, 'अब जाने दो।'

'क्या सचमुच आप जा रहे हैं ?' 'घबरा गई ज़ुलेखा।' 'इतनी जल्दी क्या है ?'

'नहीं, जाने दो। इस वक़्त मत रोको।'

'अब नहीं रुकेंगे आप ?'

'कैसे रुकूँ' ? कहते कहते कहते यशवन्त के दोनों हाथ आलिंगन के लिये फैल गये। जाने कैसे ज़ुलेखा उसमें बँध गई !

—:o:—

# ७

युसुफ़ जाह बहादुर के बँगले पर आज अच्छी खासी चहल पहल थी। शाम को सभी खित्तों के प्रतिनिधियों की सभा होने वाली थी। दोपहर ही से प्रतिनिधि आने लग गये थे। उधोपूर, मझगवाँ और समस्तीपूर के ठाकुरों और पठानों की बहादुरी की शोहरत गिर्दोनवाह में बहुत दिनों से थी। यहाँ के आम बाशिन्दे अच्छे खाते पीते लोग थे। यों किसी बात की कमी न थी, लेकिन लड़ना इस सब लोगों का शेवा था, पेशा था। साधारणतः चाहे आपस में कितनी ही अनबन क्यों न हो लेकिन मौक़ा आने पर ऐसे एक हो जाते थे जैसे सगे भाई। इस समय यह कहना मुश्किल ही नहीं असम्भव भी था कि ये लोग आपस में भी कभी लड़ते रहे होंगे।

रंगपूर न खित्तों का केन्द्र था। हमेशा से वह हर मामले में दूसरे खित्तों को नेतृत्व प्रदान करता है आया था। आलम जाह बहादुर के ज़माने में रंगपूर अपने उरुज पर था। वह योग्य शासक, सच्चे दोस्त, लायक़ रहनुमा और दरियादिल आदमी थे। ऐशो आराम में किसी से कम न थे। आस पास की कौन सी ऐसी ख़ूबसूरत, परीरु तवायफ़ बची थी जिसने उनके दरबार को गाहे बगाहे रोनक़अफ़रोज़ न किया हो और इनाम बख़्शीश से अपने को माला माल न किया हो? जाम पर जाम चलते, राग रागिनी और अलापों से बँगला ही नहीं, आस पास के बाग़ बग़ीचे भी प्रतिध्वनित हो जाते। दरबारियों का दिल थिरकने लगता, नर्तकियों के कोमल पद चाप से उनके दिल के तार

झंकृत हो उठते। लगता, इन्द्र का दरबार है, अप्सराओं का झुरमुट है, देवताओं का जमघट है, नैसर्गिक आनन्द और मादक स्वर लहरी में विभोर सुरापान चल रहा है। एक समा बँध जाता। एक दौर चल जाता तो लोग छक कर मदहोश हो जाते। उनके जीवन का यह एक पक्ष था, एक रुख़ था। आलम जाह बहादुर इसमें उनके अगुआ थे।

जब ज़रूरत पड़ती तलवारों की झनझनाहट की, घोड़ों की हिनहिनाहट और टापों की, 'बम बम, हर हर महादेव' और 'अल्ला हो अकबर' के नारों की, जब ज़रूरत पड़ती सरफ़रोशी की, दिलेरी, जाँफ़िशानी और कामरानी की, उस समय यही लोग यमदूत बन जाते। कहना मुश्किल हो जाता कि ये सूरमा, मनचले जवान, ये सर फ़रोश, सौदाई, ये रण बाँकुरे अभी अभी चन्द लमहों पहिले रूप-मदिरा पान कर रहे थे, सुरा और सुन्दरी के हाथो अपना विक्रय कर रहे थे, मधुरता, कोमलता, मोह, माया के चरणों में आत्मदान कर सर्वनाश का आवाहन कर रहे थे। पहिचानना मुश्किल पड़ जाता इन्हें। इनके जीवन का यह पक्ष भी, यह रुख़ भी लोमहर्षक था, रोमान्चकारी था। जीवन के क्षणिक शारीरिक सुख के लिये अपने को होम कर देने वाले नगाड़े की आवाज़ और डंके की चोट सुनते ही क्या से क्या हो जाते थे। आलम जाह बहादुर इसमें भी उनके अगुआ थे!

युसुफ़ जाह बहादुर बिल्कुल अपने वालिद बुज़ुर्ग को पड़े थे, रूप में, रंग में, मस्ती में, दिलेरी में, सख़ावत में, फैयाज़ी में, दयानतदारी में, दरियादिली में आलम जाह के ये साहबज़ादे अपने अब्बा के नये संस्करण थे। तस्वीर नई थी बातें सब पुरानी! और आज जब दूर दूर से सरदार जागीदार मेहमान आये थे तो युसुफ़ जाह का दिल भी बाग़ बाग़ था। एक ख़ुशी का आलम, एक जोश का मौक़ा! मेहमान नवाज़ी का ऐसा मौक़ा बार बार तो आता, नहीं! ऐसे मेहमान भी कहाँ मिलते हैं जो अपनी मौत का संदेशा सुनने, अपना सर्वस्व

होम करने की तैयारी के लिये ख़ुद बख़ुद परवानों की तरह मन चले हो चले आवें। इसलिये आवें कि आने से अपने को रोक न सकें। और आवें अपनी प्यारी शमा की शीतल ज्वाला में झुलस झुलस, तिड़तिड़कर जल जाने के लिये, अपने को राख बना देने के लिये, अपनी हस्ती को अपने हाथों नेस्ती में बदल देने के लिये! आज दावत तवाज़ो के बाद तैयारी होगी, इन्तज़ाम होगा मौत के साथ खुल कर खेलने का, ज़िन्दगी की बाज़ी लगाने का, अपनी चिता पर खड़े हो जीवन के आवाहन का, अपनी आज़ादी, ख़ुद्दारी और हुब्बेवतनी के लिये अपनी जान का सौदा करने का, फिरंगियों से आख़िरी निपटारा, आख़िरी फ़ैसला करने का!

इसलिये, युसुफ़ जाह बहादुर ने दिल खोलकर दावत तवाज़ो की, अपने जी का अरमान निकाला। मेहमान ख़ुश हो गये। संघर्ष और युद्ध की तैयारी के इस मारू इस शान के साथ दावत तवाज़ो खाना-पीना असामयिक लगते हुये भी जम गया। इसलिये कि इसके बाद ही लोगों को जुटकर अगला कार्यक्रम बनाना था।

सामने का मैदान सज गया। जगह जगह से आये हुये नुमाइन्दे सरदार और अपनी अपनी कुर्सियों पर आ डटे। युसुफ़ जाह बहादुर और लाल यशवन्त सिंह ने सबको सम्मान पूर्वक यथा स्थान बिठाया और जलसे की कार्रवाई शुरू हुई। युसुफ़ जाह बहादुर ने मेहमानों का स्वागत किया।

"सरदारो और जागीरदारो,"

मैं आपका इस्तक़बाल करता हूँ। हमारे लिए सचमुच फ़ख्र की बात है कि आपने यहाँ आकर अगली तैयारी के लिये सोच विचार करने में शिरकत करने की तकलीफ़ गवारा की। रंगपूर के बाशिन्दों को आप लोगों की मदद और रहनुमाई का पूरा भरोसा है। हम वायदा करते हैं कि आप लोगों के साथ रहकर और आपके कान्धे से कान्धा मिला कर हम दुश्मनों का मुकाबिला करेंगे। हमें पूरा यक़ीन है कि हम ज़रूर

कामियाब होंगे। हमें अपने ख़ित्ते के जवाँमर्दों की हिम्मत, बहादुरी और दिलेरी पर नाज़ है। हमारे बुज़ुर्गों की रुहें हैं इस वक़्त बेताब हो हमारी ओर देख रही होंगी। हमें भरोसा है कि हम उनकी उम्मेदों पर पानी नहीं फेरेंगे। उनकी औलाद होने की ज़िम्मेदारी हम समझते हैं। अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करने में हम कोई भी दक़ीक़ा उठा नहीं रखेंगे।

इस वक़्त हमारी आज़ादी, हमारी ज़िन्दगी ख़तरे में है। हम शान से जीना जानते हैं, शान से मरना भी जानते हैं। यह धरती हमारी है। इसी की गोद में हम पले और बड़े हुए हैं। इसे हम गैरों के हाथों में नहीं जाने देंगे। सच्चाई हमारे साथ है, इन्साफ़ हमारे साथ है। इसलिये दुश्मन की बड़ी से बड़ी ताक़त का भी हम कामयाबी के साथ मुक़ाबिला करेंगे।

हमारी बहिनों, माओं की लाज, हमारे खेतों की बालियाँ, हमारे पेड़ों के झुरमुट, हमारे चाँद तारे, सभी हमसे इस वक़्त क़ुर्बानी और जाँफ़िशानी की माँग कर रहे हैं! हमारे बुज़ुर्गों का गर्म ख़ून अब भी हमारे रगों में रवाँ है। हम हटेंगे नहीं, डटे ही रहेंगे। हम रुकेंगे नहीं, झुकेंगे नहीं। होश रहते, एक साँस भी बाक़ी रहते, हम अपना काम करते ही जायेंगे।

हमारी यह लड़ाई सिर्फ़ अपने ख़ित्ते की लड़ाई नहीं है। इस वक़्त सारे मुल्क में बग़ावत की लहर दौड़ रही है। जगह जगह लड़ाइयाँ हो रही हैं। हम सारे देश में होने वाली उसी जंगे आज़ीम के हिस्से हैं। हम अपनी क़ौम और अपने मुल्क का झण्डा नीचा नहीं होने देंगे।

'मादरे हिन्दोस्ताँ नाचीज़ तोहफ़ा हेा क़बूल
ख़ून से लुथड़ा हुआ अपना ही सर लाया हूँ मैं।'

आज हमारा यही नारा है। आज हमारे यही अरमान हैं। आज हमारा यही फ़र्ज़ है।

एक बार फिर मैं आपका स्वागत करता हूँ। हमारे इस वक़्त के फ़ैसले हमारी कामयाबी नाकामियाबी का फ़ैसला करेंगे। हमें यक़ीन है "हमारे ये फ़ैसले हमारे दुश्मनों की हार और हमारी जीत को पक्का कर देंगे।"

युसुफ़ जाह बहादुर के अभिभाषण से सारे प्रतिनिधि कितने प्रभावित हुये यह कहने की चीज़ नहीं हैं। प्रतिनिधियों के दिलों में यों ही एक आग लगी हुई थी। शोले भड़क रहे थे। युसुफ़ जाह बहादुर के ये शब्द जैसे उन्हीं के दिलों से निकले थे। बातें उनकी थीं, ज़बान युसुफ़ जाह बहादुर की। सारा वातावरण बदल गया। कुछ क्षणों पहिले जहाँ हंसी ठट्ठा और मस्ती का आलम था वहाँ एक ख़ामोशी, गंभीरता और गरमी की कैफ़ीयत पैदा हो गई। युसुफ़ जाह बहादुर ने बैठते समय कहा, "मेरी तजवीज़ है कि आज के इस जलसे की सदारत हमारे बुज़ुर्ग और आज़मूदा रहनुमा सरदार राम उजागर सिंह करें। सरदार साहब को इस ख़ित्ते के सभी लोग जानते हैं। उनकी तारीफ़ करने की कोई ज़रूरत नहीं हैं। मुझे उम्मेद है आपको यह तजवीज़ क़बूल होगी।"

सरदार साहब बीच की कुर्सी पर आ गये तो जलसे की कार्रवाई शुरु हुई।

प्रतिनिधियों ने एक के बाद एक इस बात के लिये ज़ोर दिया कि युसुफ़ जाह बहादुर सारे ख़ित्ते के सेनापति बनाये जायँ। चूँकि यह प्रस्ताव सरदार साहब की ओर से ही उठाया गया था इसलिये और लोगों की सहमति भी एक के बाद एक मिलती गई। युसुफ़ जाह के लिये संकोच का अवसर आगया, इसलिये नहीं कि वह ज़िम्मेदारी लेने से भागते थे, डरते थे, अथवा अपने को अयोग्य पाते थे, बल्कि

इसलिये कि सरदार राम उजागर सिंह जैसे आज़मूदा और समझदार रह नुमा के रहते किसी दूसरे का उस पद को स्वीकार करना बिल्कुल ग़लत था। इसलिये उन्होंने, इससे साफ़ इन्कार किया और नुमाइन्दों से गुज़ारिश की कि वे अपना प्रस्ताव वापस ले लें। उधर सरदार साहब का कहना था कि बाप की जगह बेटा ही ले सकता है, आलम जाह बहादुर की जगह युसुफ़ जाह बहादुर को ही लेनी चाहिये। अधिक समय हो गया तो मजबूर होकर युसुफ़ जाह को पंचो की राय के सामने सिर झुकाना पड़ा। शर्त यह थी कि सरदार साहब भी हर काम में, हर मामले में युसुफ़ जाह बहादुर के साथ रहेंगे और रहनुमाई करेंगे।

फिर सवाल उठा चारो गाँवों की सरदारी का। यों परम्परागत सरदार तो बहुत से थे लेकिन जब सारे खित्ते का सेनापति एक नौजवान बनाया गया तो गाँवों में भी यही क्यों न किया जाय! उधमपुर, मझगवाँ, समस्तीपूर, वालों ने अपने अपने सरदारों के नाम दिये और उन्हें स्वीकार कर लिया गया। रंगपूर का सवाल फिर सामने आया। अबकी ठाकुर भगवान सिंह ने रंगपूर की सरदारी के लिये लाल यशवन्त सिंह का नाम पेश किया। यशवन्त नाही नूही करे इसके पहिले ही सरदार साहब ने और उनके बाद दूसरे प्रतिनिधियों ने इसका समर्थन कर दिया। यशवन्त के सिर सरदारी का सहरा बँध गया। युसुफ़ और यशवन्त में से किसी ने भी यह आशा नहीं की थी कि उन्हें इतना सम्मानास्पद पद सर्व सम्मति से दे दिया जायगा। लेकिन जब ऐसा हो गया तो दूसरे प्रतिनिधियों के साथ इन दोनों को भी विश्वास सा हो गया कि जिस ज़िम्मेदारी के स्थान पर उन्हें बिठाया गया है निस्सन्देह अपने को वे उसके योग्य साबित करेंगे।

इसके बाद चारों गाँवों के प्रतिनिधियों की एक समिति बना दी गई। यह समिति सलाह देने और निश्चित कार्यक्रम को अमल में लाने के लिये ज़िम्मेदार ठहराई गई। सलाह देने वाली इस समिति को किसी भी समय कुछ भी फ़ैसला करने का अधिकार था। अन्त

ज़रूरी बातों के सम्बन्ध में फ़ैसला कर लेने के बाद जलसा बरख़ास्त किया गया।

दूसरे दिन सुबह मेहमानों को जाना था इसलिये आज रात ही महफ़िल जुटनी चाहिये थी। शायद अपने तरह की यह आख़िरी महफ़िल होगी। युद्ध के बाद की कौन जाने ? क्या होगा कोई नहीं कह सकता। अपने दरवाज़े पर चुने हुये नुमाइन्दों की हैसियत से इतने मेहमान आवें और घन्टे दो घन्टे महफ़िल भी न जमे, यह कैसे हो सकता था ? अपने बुज़ुर्गों की लुटिया तो डुबानी नहीं थी। जो हमेशा से होता आया है उसका अब भी होना सर्वथा उचित है। इसलिये खाने पीने के बाद घन्टे दो घन्टे की तफ़रीह ज़रूरी थी।

जब सब सरदार और जागीरदार इकट्ठे हुये तो महफ़िल गर्म हुई। दौर चलने लगा और मधुर, कोमल स्वर लहरी सारी महफ़िल में लहराने लगी। दो घड़ी के आनन्द ने उनकी सारी थकावट दूर कर दी। महफ़िल समाप्त हुई तो सरदार अपने अपने बिस्तरों में चले गये।

× × ×

आज पूर्णिमा की रात थी पूर्णिमा की रात्रि अपनी शीतल ज्योत्सना की चादर से जब सारी प्रकृति को ढँक देती है उस समय विरहिणी नवयौवनाओं और प्रोषित पतिकाओं के हृदय की पीड़ा बहुत बढ़ जाती है। शीतल वायु का एक एक झोंका, उसका मृदु मृदु स्पर्श, शरीर को रोमान्चित और उसके तारों को स्पन्दित कर देता है। ज्योतिर्मयी की दशा यही थी।

उसने चाँद देखा। चाँद देखती आई थी बहुत दिनों से। लेकिन अबकी का चाँद ज्यों ज्यों बढ़ने लगा था उसके शरीर की सिहरन और पुलकन भी बढ़ती गई थी। उसके हृदय की गति और धड़कन भी तेज़ होती गई थी। उसका अनमना पन, उसकी उदासी, उसकी उत्कण्ठा और चिन्ता, उसकी पीड़ा और उदासी दे सब बढ़ गई

थी। और, आज इस पूर्णिमा की भीगी, शीतल ज्योत्सनापूर्ण निशा की रजत रश्मियाँ उसके शरीर को, उसके हृदय को बेध रही थीं। किरणों मीठे मीठे चुभ रही थीं। ज्योति ने युसुफ़ से प्रेम किया था, प्रेम निवेदन किया था, स्वीकृति मिल चुकी थी। यह सब हो चुका था। लेकिन उसके बाद, उसके बाद कुछ नहीं हुआ था। शायद कुसमय और कुबेला में ही यह कार्य आरम्भ हुआ था, अन्यथा एक ही गाँव में रहने के बावजूद भी इतने दिन हो गये उनको एक बार दर्शन देने का, एकान्त में कुछ क्षणों के लिये मिलने का अवसर क्यों नहीं मिल सका ? माना कि वह इस समय बहुत व्यस्त हैं। माना उनका शरीर और मस्तिष्क इस समय बड़े बड़े प्रश्नों को हल करने में, बड़ी बड़ी उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने में लगे हुये हैं, फिर भी वह अवसर ढूँढ कर एक बार आ सकते थे !

वह क्यों नहीं आये ? क्या सचमुच उन्हें अवसर नहीं मिला ? अथवा, आने से घबराते तो नहीं, बचते तो नहीं ? क्यों न मैं उन्हीं के पास जाऊँ ? वह व्यस्त हैं, मैं तो व्यस्त नहीं हूँ। उनके पास मेरे लिये समय नहीं है। मेरे पास उनके लिये समय ही समय है। तो मैं जाऊँगी, मुझे जाना चाहिये। मगर, मगर पिता जी। वह क्या सोचेंगे ! उन्हें क्या सोचना चाहिये ! उँह ! कुछ समझ में नहीं आता। मेरी बातों का किसी को पता नहीं है। अगर मैं वहाँ, उनके पास गई तो शंका हो सकती है देखने वालों को। उस दरबार में, उस चहल-पहल में मेरा क्या काम ? फिर वहाँ कितने आदमी होंगे—कहाँ कहाँ के आदमी होंगे, जाने क्या हो रहा होगा। तो, मुझे वहाँ नहीं जाना चाहिये। वहाँ जाना अनुचित है, असामयिक है !

लेकिन मैं, यहाँ अकेले कब तक पड़ी रहूँ ? एक दिन, दो दिन दस दिन, बीस दिन, कब तक राह देखूँ ? उनको सुधि ही नहीं होगी। मैं तड़प रही हूँ, मैं विह्वल हो रही हूँ, एक क्षण भर के दर्शन के लिये, एक सुखद शीतल स्पर्श के लिये, एक गर्म ओष्ठ मिलन के लिये !

क्षणिक आनन्द का मेरा यह सुखद सपना क्या अपूर्ण ही रहेगा ? क्या वह कभी कभी पूरा न होगा ?'

ज्योतिर्मयी भावावेश में अपने विस्तार पर पड़ी सोचती रही। उसका कल्पनासुलभ हृदय जो भावुकता की लहरियों में तिर रहा था इस समय, विह्वल और विक्षुब्ध हो उठा। साजन अगर दूर हों, चिट्ठी पत्री पहुँचने की सुविधा न हो तो मन को संतोष हो जाता है, परवशता स्वयं घाव पर मरहम करती है। लेकिन इतने पास, एक ही गाँव में, कुछ ही दूरी के फ़ासले पर, वह रहें और महीनों बीत जाय यह कैसी बात है ?

वियोग की रात दुखदायी तो होती ही है, बड़ी भी बहुत होती है। एक क्षण एक घड़ी के समान हो जाता है। एक एक निशा कल्पमान हो जाती है। ज्योतिर्मयी को ऐसा ही लग रहा था। पड़ी पड़ी कभी वह चाँद तारों को कोसती, कभी शीतल वायु के झकोलों से उलझती। इनसे उसे चिढ़ हो गई थी। नाहक, छू छू कर तंग करती रहती हैं यह निगोड़ी हवा।

ज्योतित निशा की रजत रश्मियों के झीने आवरण में लिपटी ज्योतिर्मयी अन्तर्मुखी हो, भावनाओं के अतल सागर में ग़ोते लगाती नीचे और अधिक नीचे, गहरे और अधिक गहरे उतरती गई। वाह्य प्रकृति की अनुभूति कम होने लगी। वह अपने हृदय के पर्दों को उधेड़ती, उघाड़ती उसमें छिपे भावों को कुरेदती पड़ी रही। शिथिल शरीर और शिथिल मन लेकिन चिन्तन धारा का अविरल प्रवाह! उसका कवि हृदय, कल्पना के पंखों पर चढ़ जैसे किसी दूर देश की ओर उड़ चला, वह देश जिसका आदि नहीं अन्त नहीं, रूप नहीं रेखा नहीं। उसकी यह मंज़िल विहीन उड़ान सच्चाई के शिलाखण्ड से कब, कहाँ, कैसे टकरायेगी, कोई नहीं कह सकता। उड़ान की गति में बाधा नहीं, रुकावट नहीं, मंथरता नहीं। हाँ, उसके ओष्ठ अक्सर बुदबुदा उठते।

'शीतल ज्योत्सना बेध रही है हिय को धीरे धीरे।'

सहसा उसके मन में कुछ ख़्याल आया और वह उठ खड़ी हुई। अपनी साड़ी सँभाली और कमरे में आई। बैठकर खिड़की से छन कर आती हुई किरणों की रोशनी में उसने एक पत्र लिखना शुरू किया।

"प्राणनाथ, यह पत्र लिख रही हूँ इसलिये कि बिना इसके लिखे रहा नहीं जाता। क्या आपको मुझ अभागिनी से मिलने के लिये दो क्षण का समय मिल सकेगा? विश्वास कीजिये, आपका मूल्यवान समय नष्ट न करूँगी। आपसे मिलकर मुझे शान्ति मिलेगी और मैं अपना भविष्य का कार्यक्रम निश्चित करने के योग्य हो जाऊँगी। सम्भव है आने वाली आपदपूर्ण घड़ियों में मैं आप की सहायता कर सकूँ! कम से कम राह का काटा न बनूँगी। अगर कोमल नारी हृदय की करुण चीत्कार इन शब्दों के माध्यम से आप तक पहुंच आपको मेरे समीप लाने में समर्थ हो सकी तो कृत कृत्य होऊँगी।

आपकी अपनी

"ज्योतिर्मयी"

बाहर जाकर उसने अपने नोकर को जगाया, पत्र उसके हाथ में दिया, बातें सहेजीं, उत्तर लेते आने के लिये कहा और वापस आ अपने बिस्तर पर पड़ रही! धड़कते हृदय पर एक एक पल का दुर्वह भार सहती शिथिल पड़ी ज्योतिर्मयी ख़ाली आखों आसमान की ओर देखती रही।

पत्र लिखने के बाद वह कुछ तो निश्चिन्त हो ही गई थी। इसलिये अपनी भावुकता के व्यक्तिगत आधार की सीमा लाँघ सकना उसके लिये सम्भव्य होता जा रहा था। वह अपनी चिन्तन धारा में मोड़ दे सकती थी, घुमाव दे सकती थी। उसकी गतिविधि और

रूपरेखा बदल सकती थी। ज्योति कुछ ठोस धरातल के समीप आने, उसे छू पाने का प्रयत्न करने लगी।

'और तब याद आया कि उसके गाँव पर विपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं। उसकी घनघोर वर्षा और आँधी अँधड़ में मज़बूत से मज़बूत वृक्ष उखड़ जा सकते है। छानी छप्पर उड़ जा सकते है। खेतों की क्यारियाँ नष्ट हो जा सकती हैं, उगे पौदे, खड़ी फ़सलें, सभी मटियामेट हो जा सकते है, मानव जीवन, गाँव का जीवन मिट जा सकता है। यह शान्ति और नीरवता का साम्राज्य किसी आगामी भयानक तूफ़ान का सूचक है। जैसे समाचार आ रहे थे, गाँव के वातावरण में जिस प्रकार दिनों दिन परिवर्तन होता जा रहा था, जिस प्रकार लोगों की बातचीत, चाल ढाल में अन्तर आता जा रहा था वह द्योतक था नवजीवन का, उस नवजीवन का जो क्षणिक किन्तु महत्वपूर्ण, जो क्षिप्र गति वाला किन्तु चिरस्थायी फल लाने वाला होता।

'उस वातावरण में, नवजीवन की उस पावन वेला में, संक्रान्ति के उस काल में उसका, ज्योतिर्मयी का, दुर्बल भावुक नारी का क्या स्थान होगा! क्या यह तूफ़ान उसे यों ही ऊपर ही ऊपर छूकर चला जायेगा? क्या उस महायज्ञ में जिसमें स्नेही सम्बन्धी और अन्य ग्राम निवासी अपनी अपनी आहुतियाँ देंगे वह भी कुछ देगी? योग दान करेगी?' ज्योतिर्मयी सोचती गई, 'उसके पिता, उसका अपना युसुफ़, उसका राखीबन्द भाई यशवन्त, उसके पुरजन, परिजन जिस यज्ञ में भविष्य बनने जा रहे हैं, जिसकी लपटें लालायित हो उसकी ओर बढ़ती आ रही हैं, जिसकी ज्वाला कायरों, पामरों, भगोड़ों को झुलसा देगी जला देगी, वह यज्ञ उसका भी आवाहन कर रहा है। वह नारी है तो क्या? दुर्बल और परवश है तो क्या, जोहर की ज्वालाओं ने उसी नारी समुदाय का सक्रिय सहयोग पा हमेशा आकाश के उच्चतम स्तर को चूमा है। आख़िर वह भी राजपूत की ही बेटी है, वह राजपूत जो अपने को साँगा और प्रताप के वंशज कहलाने का दावा करते हैं, वह राजपूत जो

आग से खेलने, मृत्यु वरण करने और मृत्युञ्जय होने का अभिमान करते हैं, उन्हीं की सन्तान वह है ज्योतिर्मयी ! कुल-लक्ष्मी, सुगृहणी, नारी ही दुर्गा, चण्डी और काली बन सकती है।'

ज्योति को अपने अन्दर परिवर्तन सा होता जान पड़ने लगा। जान पड़ा, उसके हृदय की गति में मज़बूती आ रही है, पहिले जैसा हल्कापन नहीं रह गया है, जान पड़ा, उसकी नसों में हरकत सी आरही है जैसे ख़ून में गर्मी आ रही हो। अनुभव होने लगा कि वह अब अधिक सुदृढ़, अधिक स्थिर, अधिक आत्म निर्भर होती जा रही। जैसे उसकी दुर्बलत, उसकी परावलम्बन की छिपी कामना, आश्रय पाने की अन्तर्हितभावना काफ़ूर हुई जा रही है, उसे अपने ऊपर अधिक भरोसा होता जान पड़ा। लगा वह अब स्वस्थ होती जा रही है।

उसका ध्यान एक बार युसुफ़ की ओर गया, जिसका सतेज मुख, जिसकी रोशनी से चमकती आँखें, जिसका चाड़ा काँन्धा, जिसकी उभरी छाती, जिसके लम्बे लम्बे हाथ पाँव मानों फिरंगियों से कह रहे हों 'आते ही हो तो आओ, हम तुम्हारा इस्तक़बाल करने के लिये तैयार हैं। याद रहे, आ कर वापस न जा सकोगे।' ऐसे पति की पत्नी होना, ऐसे प्रणयी की प्रणयिनी होना, ऐसे पुरुष की स्त्री होना, किस नारी को गौरव से मंडित नहीं करेगा ? कौन स्त्री अपना सब कुछ मिटा कर, अपना सब कुछ लुटा कर भी ऐसे व्यक्ति के पाने में अपने को धन्य नहीं मानेगी ? ओह, कितनी आसानी से, बिना किसी मूल्य के वह अमूल्य रत्न, वह अमूल्य निधि उसे सहज ही प्राप्त हो गई ! वह घड़ी भी कितनी शुभ थी ? वह संध्या वेला भी कितनी पुण्य थी ! ओह !

आत्मतुष्टि, हर्षातिरेक और गर्व से उसकी आँखों में आँसू छल छला आये।

"सुना रे ज्योति, युसुफ़ सारे ख़ित्ते के सेनापति बनाये गये हैं,"

कहते हुये ठाकुर भगवान सिंह घर में दाख़िल हुये। ज्योति ख़ुशी के मारे रो पड़ी।

"यह क्या हो रहा है, तू रो क्यों रही है?" अचम्भे में पड़कर ठाकुर साहब ने पूछा।

ज्योति ने आँसू पोछते पोछते कहा, "नहीं, ऐसे ही, रो कहाँ रही थी!"

"नहीं, तेरे आँखों के आँसू तो अब भी चमक रहे हैं। क्या बात है बताती क्यों नहीं?"

"कुछ तो नहीं। आप बेकार परेशान हो रहे हैं।"

"अच्छा देख, यश बाहर आया हुआ है। वह अब घर नहीं जायेगा। लाल साहब से उससे आज अनबन हो गई है। उनका रुख़ दिनों दिन ख़राब होता जा रहा है। यशवन्त को भी वह हम लोगों का विरोधी बनाना चाहते थे। सरदार राम उजागर सिंह की बात भी उन्होंने नहीं मानी। यश अपने पिता से सम्बन्ध तोड़कर यहीं हम लोगों के साथ रहना चाहता है। कहता है रंगपूर का संगठन यहीं पर रह कर अच्छा हो सकेगा। मैं एक बार फिर कोशिश करूँगा कि लाल साहब मान जाँय! अगर मान गये तो सब ठीक ही है, अगर न माने तो हमें उनका भी मुक़ाबिला करना पड़ेगा। उनका मस्तिष्क जिस प्रकार काम कर रहा है उससे यही डर होता है कि कहीं वह शत्रुओं से मिल न जाँय। यश उनसे नाता तोड़ना चाहता है। उसका मन बिल्कुल खट्टा हो गया है। तू जा के उसके सोने का प्रबन्ध कर दे। वहीं दालान में ठीक रहेगा।" कहते हुये ठाकुर साहब आगे बढ़ गये अपने कमरे की ओर।

ज्योति दौड़कर बाहर आ गई। यशवन्त फैला हुआ आराम से अधलेटा पड़ा था। ज्योति आई तो वह उठ बैठा। ज्योति ने फ़ौरन

बिस्तर का प्रबन्ध किया। उस पर लेटते लेटते यशवन्त ने पूछा, "क्यों रे ज्योति, क्या हाल है तेरा ?"

"अच्छा है।"

"तेरा युमुक़ तो प्रधान सेनापति चुन लिया गया। अब तो उसका बड़ा रंग है।"

"और तुम्हें क्या बनाया गया ?"

"मुझे क्या बनाते। मैं किस लायक़ था ?"

"यह मैं कैसे मान लूँ कि मेरा भैया किसी लायक़ नहीं ? तुम झूठ बोलते हो।"

"नहीं ज्योति, झूठ नहीं बोल रहा। जानती है, मैं कवि, भावुक, मौजी आदमी। किसका दिमाग़ ख़राब हुआ है जो मुझे किसी ज़िम्मेदारी का काम दे दे ? युद्ध का मामला गंभीर होता है न।"

ज्योति को अब भी विश्वास न हुआ।

यशवन्त लेटे लेटे मुस्कराता रहा। ज्योति का अविश्वास बढ़ता गया। उसने फिर पूछा, "सच क्यों नहीं बताते ? तुम्हें कौन सा काम दिया गया ?"

"कुछ नहीं ! रंगपूर की सरदारी मुझे दी गई। संकोच तो तुझे बहुत हो रहा था। लेकिन पंच की राय कैसे न मानता ? स्वीकार करना ही पड़ा। बचने का कोई रास्ता न था।"

"ज्योति मुस्करा पड़ी। तो अब तुम हमारे सेनापति हो गये हो ?"

"हाँ।"

"अच्छा सेनापति जी, आप कृपा करके यह बताइये कि हम दुर्बल कमज़ोर स्त्रियों से भी किसी सहयोग, सहायता की आप आशा रखते हैं ? हमें भी कुछ काम दीजियेगा ?"

"क्यों नहीं ! सुना नहीं तुमने नाना साहब के बेटी तो इस समय कमाल कर रही है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई एक पूरी सेना का संचालन कर रही हैं। तुम भी तो राजपूत की बेटी हो। तुम क्यों नहीं कुछ कर सकती ? तुम लोग चाहो तो रणक्षेत्र में जाकर शत्रुओं के सिर उड़ा सकती हो। ताऊ जी ने तुम्हें बचपन से ही युद्ध विद्या की शिक्षा दी है। तुम्हें वीरांगना बनाया है। तुम्हें राजपूती बाना पहिने, घोड़े की पीठ पर सवार शत्रुओं से रण करते देख किस स्वाभिमानी क्षत्रिय का सीना नहीं फूल उठेगा। ज्योति, मुझे तुम्हारे प्रश्न पर आश्चर्य होता है। मैं मानता हूँ कि आज साधारण तौर पर हमारी महिलायें रणक्षेत्र में जाने से हिचकती हैं, लेकिन समय पड़ने पर यही महिलायें अपनी कमर में अपने दुधमुँहे बच्चे को बाँधे तलवार चलाती दिखाई देंगी। तुम समझती हो कि घर में अबला, परवश, अनाभित पड़ी रह मृत्यु का आवाहन करती रहना रणभूमि में वीरगति प्राप्त करने से अधिक श्रेयस्कर है ?"

ज्योति की बाँछें खिल गईं। वह उछल पड़ी, "तो मुझे भी जूझने का मौक़ा मिलेगा ? भैया, मैंने अपने को तुम्हारी बहिन बनाया है। विश्वास रक्खो, मेरी तलवार अपना काम करेगी। ताऊ जी की शिक्षा बेकार न जायेगी। तुम्हें शायद नहीं मालूम है, झूली भी अच्छा निशाना मार लेती है। मैं सोचती हूँ क्यों न हम यहाँ की औरतों में कुछ संगठन करें ?"

विश्वास करो, जिस समय युद्ध में तुम्हारी ज़रूरत पड़ेगी तुम्हें बुला लिया जायेगा। इस समय तुम और ज़ुलेख़ा साथ साथ मिल कर गुप्त समाचारों के ले जाने ले आने का प्रबन्ध करो। गाँव के सब रास्ते देख लो। बाहर से आने वाली सड़कों और पगडंडियों का पता लगा लो। जिस समय फ़ौज लड़ने मैदान में चली जायेगी उस समय पीछे की सारी ख़बरें फ़ौज तक पहुँचाने का काम तुम्हीं लोगों का करना होगा। तुम दोनों तेज़ हो, चुस्त हो, समझदार हो। इस काम में होशियारी की

बड़ी ज़रूरत है। गुप्त बातें किसी भी हालत में प्रगट न हो जायें इसका पूरा ध्यान रखना पड़ेगा।"

"लेकिन भैया, इसमें दुश्मनों पर हमला करने का मौक़ा कैसे मिलेगा? उनसे कैसे बदला लूँगी?"

"दुत पगली, इतनी ना समझी की बातें कर रही है कि क्या बताऊँ। अरे, आगे बढ़कर लड़ने वाली फ़ौज की मदद करना, उसे सजग, सचेत करते रहना, उसे ख़तरों से बचाते रहना, अपनी जान जोख़िम में डालकर अँधेरे में रात रात डोलना क्या कम बहादुरी की बात है! दुश्मन से भिड़कर जान दे देना और जान ले लेना आसान काम है, लेकिन मृत्यु के साये में रहते हुये भी मृत्यु की पवाह न करना और चुपचाप अपना काम करते जाना, ऐसा काम जिसे न शत्रु जानें, न मित्र, मामूली नहीं, बहुत मुश्किल काम है। अभी तुझे उसका अन्दाज़ नहीं, जब सिर पर पड़ेगी और उसकी कठिनाइयाँ सामने आयेंगी, उन कठिनाइयों का तू सामना करेगी तब तुझे पता चलेगा कि तेरा काम मुश्किल ही नहीं बहुत मुश्किल है।" यशवन्त ने ज्योति को समझाया।

अब ज्योति को लगा कि उसका जीवन सार्थक होने जा रहा है। वह अब सन्तुष्ट हो रही थी। यशवन्त से बातें करते समय उसे युसुफ़ के पत्रोत्तर की याद न हो ऐसी बात नहीं, वह जानबूझ कर अभी चुप रहना चाहना चाहती थी। सोचा था कि जब जवाब आ जाय तब उसे देख यशवन्त आश्चर्य चकित रह जायेगा। इसीलिये वह बात करती जा रही थी और उत्तर की राह भी देख रही थी।

थोड़ी देर में नौकर पुर्ज़े का उत्तर लेकर आता दिखाई दिया। आगे बढ़कर ज्योति ने चिट्ठी उसके हाथ से ले ली। चिट्ठी पढ़ी तो उदास हो गई। उसका मुँह लटक गया। आके अशवन्त के पास धम् से बैठ गई।

"क्या बात है ज्योति, चिट्ठी कहाँ से आई है ? तू ऐसी उदास क्यों हो गई ?" यशवन्त ने उत्सुक हो पूछा।

"कुछ नहीं, यह तुम्हारे सगे का जवाब आया है प्रधान सेनापति जी का," रूठकर कहती हुई ज्योति ने पत्र आगे बढ़ा दिया।

"ज्योति, मेरी रानी,

तुम्हारा ख़त मिला। इस वक़्त मैं बहुत थका हुआ हूँ। सोने जा रहा हूँ। जब कभी मिलने का मौक़ा मिलेगा, तुमसे बातें करूँगा। अभी फ़ुर्सत नहीं है। बुरा न मानना।

तुम्हारा
"युसुफ़"

"गधा है बिल्कुल। अहमक। चिट्ठी भी लिखने नहीं आती, चला है सेनापति बनने। तू जाकर सो जा। रात अधिक बीत गई है। कल मैं उससे बातें करूँगा।"

ज्योति उठकर चली आई और अपने बिस्तर पर पड़ रही। उसको युसुफ़ के जवाब से बहुत चोट लगी। उसकी भावुकता को ठेस पहुँची थी। वह उदास पड़ी रही। धीरे धीरे उसे नींद आने लगी। वह सोचती जा रही थी और पलकें भारी पड़ती जा रही थीं। सोते सोते उसके मुँह से निकला 'सचमुच थक गये होंगे— काम जो बहुत करना पड़ा है।'

—:०:—

# ८

लाल कुलवन्त सिंह का रुख़ ख़तरनाक था। आज जब सरदार रामउजागर और ठाकुर भगवान सिंह ने साफ़ कह दिया कि लाल साहब को बस में लाना अब असम्भव है तो युसुफ़ जाह परेशान होने लगे। उनके दिमाग़ की अजब कैफ़ियत थी। क्या करें यह समझ में नहीं आता था। 'कुछ भी हो, लाल साहब गाँव के नये चुने सरदार और उनके अनन्य मित्र लाल यशवन्त सिंह के पिता थे। गाँव में उनका प्रभाव भी कम न था। अगर उन्हें क़ैद कर लिया जाय और दूसरे लोगों से उन्हें कुछ महीनों के लिये अलग कर दिया जाय तो डर लगता है कि उनके हाली-मुआली, स्नेही-सम्बन्धी नाराज़ हो जायेंगे और यशवन्त को भी चोट लगेगी। अगर उन्हें योंही छोड़ दिया जाय तो वह किसी भी वक़्त धोखा दे सकते हैं। जो दुश्मन है, जिसे दुश्मन की हैसियत से सभी जानते हैं वह उतना ख़तरनाक नहीं होता जितना ख़तरनाक वह होता है जिसके बारे में कोई निश्चय नहीं है।

'लाल कुलवन्त सिंह बाअसर आदमी हैं, यह बात भी निस्सन्देह थी। किसी भी हालत में, उनका साथ देने वाले दस बीस आदमी तो मिल ही जायेंगे। बजाय इसके कि दस बीस आदमी अपने दल में शामिल हों, दस बीस आदमी अपने से अलग हो जाँय यह कितना बड़ा नुक़सान था! दुश्मन हमारी इस कमज़ोरी से कितना फ़ायदा उठा सकते हैं!' युसुफ़ उलझन और परेशानी के कारण टहलने लगा।

ऊपर पीले पीले चाँद की पीली उदास चाँदनी बिखर रही थी। नीरवता थी और निर्जनता भी। दिन भर का काम ख़त्म कर इस समय वह चुपचाप टहल टहल कर अपने इन्तज़ामों के बारे में सोच रहे थे।

मंझगवाँ, ऊधोपूर और समस्तीपूर की ख़बरें बहुत अच्छी थीं। वहाँ की तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। रंगपूर में भी सारी तैयारी हो चुकी थी। यशवन्त ने जिस चुस्ती और योग्यता का परिचय दिया उससे सभी आश्चर्य चकित हो गये थे। हरदम भावुकता के प्रवाह में बहने वाला, हरदम कविता, संगीत की बातें करने वाला, हमेशा कोमल कल्पनाओं के जगत में रहने वाला यशवन्त ठोस यथार्थवादी, सफल आयोजक और प्रबन्धक साबित हुआ तो लोगों के अचम्भे का ठिकाना न रहा। नियन्त्रण, अनुशीलन की उसकी क्षमता अद्वितीय थी। दिन भर और कभी कभी देर तक रात में भी, कठिन परिश्रम करने पर भी उसे थक कर बैठते किसी ने नहीं देखा। हरदम घोड़े की पीठ इधर उधर दौड़ भाग करते ही दिखाई देता। कभी गाँव के इस सिरे पर, कभी उस सिरे पर, कभी गाँव से दो मील दूर मैदान में, खाइयों के पास-जहाँ चाहो यशवन्त सिंह को देख लो।

ख़ुद सरदार राम उजागर सिंह का कहना था कि इसके पहिले कभी इतनी अच्छी मोर्चे बन्दी की तैयारियाँ नहीं हुई थीं। छोटी से छोटी बातों का ध्यान रखना, मामूली से मामूली विवरण की चीज़ों का स्वयं प्रबन्ध करना, हर काम को दिन डूबते-डूबते पूरा करा लेना और सिपाहियों, मज़दूरों, कारीगरों सबको ख़ुश रखना, यह यशवन्त का ही काम था। व्यवहार, बातचीत में कुशल और कोमल होते हुये भी निज़ाम और नियंत्रण के मामले में पत्थर की तरह कठोर होने के कारण यशवन्त सर्वप्रिय था, परन्तु साथ ही लोग उससे दहशत भी खाते थे, उसका दबदबा भी था। युसुफ़ को इसीलिये विश्वास हो चला था कि रंग पूर अपनी नाक नहीं कटायेगा।

लेकिन लाल कुलवन्त सिंह की याद आते ही उसका दिल बैठने लगता। फ़ौजी निज़ाम और उसूलों में तरफ़दारी और मेहरबानी के लिये स्थान नहीं होता। या तो एक व्यक्ति साथी होता है या दुश्मन! जो साथी नहीं है और जो दुश्मन है उसके साथ व्यवहार भी दुश्मनों जैसा ही होना चाहिये। लाल कुलवन्त सिंह की करनी ऐसी ही है कि उनके साथ दुश्मनों जैसा व्यवहार होना चाहिये। उन्हें क़ैद कर लेना चाहिये। उनके पास किसी को नहीं जाने देना चाहिये। जब वह अलग, बिल्कुल अलग रहेंगे तो किसी भी तरह हमें नुक़सान नहीं पहुँचा सकते। लेकिन अपने दोस्त के वालिद के साथ यह सलूक क्या ठीक होगा? क्या लाल कुलवन्त सिंह के स्थान पर अगर उसके ही वालिद ऐसा करते तो उनके साथ भी वह वही सलूक करता? शायद हाँ, क़ौम और मुल्क के सामने एक आदमी की क्या हस्ती? एक आदमी, ज़ाती तौर से चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, सारे गाँव को, सारे ख़ित्ते को धोखा देने के लिये, सबको बर्बाद कर देने के लिये छुट्टा नहीं छोड़ा जा सकता। अगर इसी तरह दोस्ती और रिश्तेदारी देखी जाय तो क़ौम की ख़िदमत हो चुकी। युसुफ़ ने फ़ैसला किया वह यशवन्त की सिफ़ारिश मान लेगा और उसके बाप को क़ैद कर लेने का हुक्म जारी कर देगा।

फ़ैसला तो युसुफ़ जाह ने कर लिया लेकिन उनके दिल को शान्ति न मिली। वह परेशान और घबराये से उलझन में पड़े इधर उधर टहलते रहे। फ़ैसला कर लेने के बाद भी उन्हें लग रहा था कि उन्होंने ठीक नहीं किया। सुबह हुक्म जारी हो जायेगा। कुछ घण्टों में लाल साहब क़ैदी बन जायेंगे। यह सब तो होगा, लेकिन इससे उसको चैन नहीं मिलेगा। अपने हमजोली, दोस्त, साथी के पिता को अपने हाथों क़ैद करना, ओफ़! लड़ाई, जंग आदमी को पत्थर बना देती है, पत्थर!

युसुफ़ टहलता ही रहा। चाँद और ऊपर उठ आया था। उसकी

चमक तेज़ हो गई थी, पीलेपन की जगह सुफ़ेदी आ गई थी दूध की तरह। नीचे की ज़मीन मँहक रही थी सोंधी सोंधी। छोटे बड़े हरे हरे बरसाती पौधे भी जैसे इस खिली चाँदनी में नहा रहे थे। आस पास जुगनू चमक उठते रह रह कर। झींगुर और मेंढक में शोर मचाने में बाज़ी लगी हुई थी। लेकिन युसुफ़ को इन सबका ध्यान न था। बदन पर हल्का कुर्त्ता, चुस्त पैजाम था, पैरों में काम दार जूते थे। बाल उलट कर कंधे तक पहुँचने की कोशिश कर रहे थे। उसकी उठी हुई मूछें, चौड़ा माथा, गंभीर मुद्रा और पीछे की ओर बँधे हुये हाथ उसकी गंभीर मानसिक चिन्ता का प्रमाण दे रहे थे।

उसका टहलना जारी रहा। वह आगे बढ़ गया। सामने आम का छोटा सा बाग़ था। उस पर बचे खुचे आम अब भी लटक रहे थे, जिनकी मीठी गंभीर महक अच्छी लगती थी। वह बाग़ में हो लिया। यहाँ उसे कुछ ठंडी हवा मिली, झोंकों ने धीरे धीरे उसके बदन को सहलाया और उसके बदन में कुछ ताज़गी आने लगी। सिर उठा कर उसने ऊपर आसमान की ओर देखा। चाँद गोया पत्ते हटाकर अन्दर झाँकने की कोशिश कर रहा था। युसुफ़ ने देखा, उसे मुस्कराहट आ गई, कह पड़ा, 'चोर', लेकिन उसे लगा चाँद अब भी वैसे ही मुस्करा रहा है, लगा कि वह कह रहा है 'रोशनी से भाग कर पेड़ों की छाया में छिपने वाला चोर है कि वह जो ख़ुद रौशन है, सबके ऊपर चमक रहा है।' मन ही मन युसुफ़ ने जवाब दिया, 'दूसरे की रोशनी के सहारे चमकने वाले चाँद मियां, ज़रा अपने भरोसे चमको तो समझूँ।'

उसी समय दूर से नज़दीक आती हुई टापों की आवाज़ सुनाई पड़ी। युसुफ़ का ध्यान उधर आकर्षित हुआ। छिन भर में ही घोड़े नज़दीक आ गये। युसुफ़ ने पहिचान लिया यशवन्त था घोड़े पर, लेकिन दूसरा कौन था यह वह न जान सका। घोड़े बाग़ से आगे बढ़ने लगे तो युसुफ़ ने आवाज़ दी, 'अरे यशवन्त, मैं इधर हूँ, यहाँ, इस बाग़ में।"

यशवन्त का घोड़ा रुका, वह छलांग मार कर उतरा। साथ ही दूसरा सवार भी उतर पड़ा। दोनों ने अपने अपने घोड़े पास के पेड़ों से बाँधे और युसुफ़ की ओर बढ़े। यशवन्त ने आगे बढ़ कर कहा, "ये हमारे दोस्त ठाकुर ज्योतिसिंह हैं। हमारी मदद करने आये हैं। तुम्हारा हुक्म चाहते हैं।"

युसुफ़ ने तपाक से आगे बढ़कर हाथ मिलाना चाहा। ठाकुर ज्योतिसिंह ने भी हाथ बढ़ा दिया। दोनों के हाथ मिल गये। लेकिन युसुफ़ ने अपना हाँथ फ़ौरन ही खींच लिया। लगा, ज़रूरत से ज़्यादा मुलायम हाथों में उसने अपना हाथ दे दिया है। वह चौंक पड़ा, हाथ स्वंय ही खिंच आया।

"माफ़ कीजियेगा, ज़रा इतने मुलायम हाथों का आदी न होने की वजह से मैं चौंक गया। बुरा तो नहीं माना आपने?" युसुफ़ ने आजिज़ी से कहा। जैसे वह अपनी हरकत पर झेंप रहा था।

सरदार ज्योतिसिंह चुप ही रहे। युसुफ़ ने ख़्याल किया मालूम होता है सरदार नये आदमी से मिलने के कारन झेंप रहा है।

"लेकिन सरदार साहब, इन मुलायम हाथों से तलवार कैसे उठेगी?" उसने फिर पूछा।

"यह न पूछो। सरदार साहब, वार करने में, बेचूक निशाना मारने में माहिर हैं। तीर, बर्छी, भाला सब चला लेते हैं। उम्र अभी कम है तो क्या हुआ शिक्षा बहुत अच्छी मिली है। दुश्मनों को ज़ेर करना इनके बायें हाथ का खेल है। तुम इनसे बातें करो। मैं ज़रा सरदार राम उजागर सिंह के पास जा रहा हूँ। उन्हें लेकर अभी आऊँगा। जैसा मैंने शाम को कहा था ख़बरें पक्की होती जा रही हैं कि वह दुश्मनों से मिल जायेंगे। अब उन्हें गिरफ़्तार कर लेना ही ठीक होगा। सबेरे ही उन्हें हिरासत में ले लेना चाहिये।" कहता हुआ यशवन्त वापस जा, घोड़े पर बैठ, एक दो तीन हो गया।

"यहीं टहलियेगा, या चलियेगा बँगले पर?" युसुफ़ ने सरदार ज्योतिसिंह से पूछा।

'यहीं।" एक महीन आवाज़ आई।

युसुफ़ अचम्भे में पड़ गया। मर्द की आवाज़ और इतनी महीन। "अच्छा आइये, बैठिये, इसी डाली के सहारे आप मैं दोनों बैठ सकते हैं।"

ज्योतिसिंह डाली पर जम गये, बग़ल में युसुफ़ जाह बहादुर भी डट कर बैठ गये। ऊपर आसमान में निखरा हुआ चाँद मुस्करा रहा था। एक दो बादल के टुकड़े उसे पल छिन के लिये ढँक भी लेते। लेकिन बादल के इन टुकड़ों की ओट से बाहर जब वह निकलता तो ज़्यादा ज्योतिवान होकर, ज़्यादा ख़ूबसूरत होकर।

ऊपर चाँद की ओर इशारा करते हुये सरदार ने कहा, "देखिये वह चाँद कितना ख़ूबसूरत लग रहा है।"

ऊपर आँखें करते करते दो मुलायम हाथों ने युसुफ़ की दोनों आँखें बन्द कर लीं। वह बिल्कुल घबरा गया। यह सब क्या गोल माल है! हाथ छुड़ा कर आँखें खोलने की उसने काफ़ी कोशिश की, लेकिन आँख बन्द करने वाले ये हाथ कोमल होते हुये भी काफ़ी मज़बूत थे। युसुफ़ को थोड़ी देर योंही अँधेरे में रख ये हाथ हटे तो युसुफ़ की चक पकाई आँखों ने देखा, उन्नत यौवना, रूप सौंदर्य की प्रतिमा-शीतल ज्योत्सना में घुलती सी ज्योतिर्मयी उसके सामने बैठी है। सिर के बाल खुल गये हैं, आँखों में, ओठों पर शरारत भरी मुस्कान, गंभीर मुद्रा बनाने का असफल प्रयत्न! यह ज्योति की ज्योतित मूर्ति थी, संगमरमरी, ख़ूबसूरत, मोहक!

युसुफ़ निस्पन्द, संज्ञा हीन, मंत्र मुग्ध सा देखता रह गया। ज्योति का दाहिना- हाथ उठा और युसुफ़ की ठोढ़ी पर पहुँच गया।

चिबुक दबा ज्योति ने पूछा, "क्या सोच रहे हैं आप ? सरदार ज्योति सिंह के रूप परिवर्तन ने आपको चकित कर दिया !"

"रूप परिवर्तन ने नहीं, योनि परिवर्तन ने।" युसुफ़ ने जड़ दिया। "लेकिन कमाल किया तुमने जोत ! तुम तो ख़ुफ़िया का काम नेहायत ख़ूबी के साथ कर सकती हो। सच, मुझे भान भी न हो सका कि तुम हो। यशवन्त ने इतना इशारा दिया, फिर भी मैं बुद्धू का बुद्धू ही रह गया।"

"जनाब, इस ख़ित्ते के सबसे बड़े सरदार को आप बुद्धू कह रहे हैं। यह बेअदबी है। जानते हैं इसकी सज़ा क्या है ?" बनावटी गंभीरता दिखा, फिर खिलखिला कर हँस पड़ी ज्योति। अनारदाने से बड़े उसके सुफ़ेद दाँत चमक उठे। उसकी मधुराई दुगना हो गई।

युसुफ़ को लगा, जैसे उसकी अँकड़ ख़त्म हुई जा रही है और वह मक्खन जैसी ज़मीन में घुसता जा रहा है। चारों तरफ़ जिस रुखाई, ऊमस और उखड़ापन का एहसास उसे होता था उसकी जगह रस, ताज़गी, ज़िन्दगी और मुलायमियत का एहसास होने लगा, धीरे धीरे ! लगा, एक रंगीन सपना वह देख रहा है, जिसमें राहत है, ख़ुशी है आज़ादी है। लगा, मोहब्बत का एक लबरेज़ प्याला उसके हाथों में है, दिल का ग़ुन्चा खिल उठने वाला है। एक घूँट और बस नई ज़िन्दगी, नई दुनिया, पहिले से कहीं ज़्यादा फ़रोग़, रोशन, पुरउमीद पुरअम्न ! लगा एक शमा जल रही है धीमे-धीमे, मधिम-मधिम, जिसकी रोशनी आँखों को भाती है, ठंढी है, जलाती नहीं, लौट लौट कर, मुड़ मुड़ कर अपनी ओर बुलाती, अपने में मिल जाने की दावत देती। और लगा, वह उस शमा की ओर खिंचता जा रहा है, खिंचता जा रहा है। वह बेबस है, लाचार है ! वह अपने को रोक नहीं सकता।

आनन्द विभोर युसुफ़ की आँखें बन्द हो गईं।

ज्योति के मद भरे लोचन अलस, मधुर, सतृष्ण युसुफ़ के चेहरे पर अटके रहे। चाँद पर बादल के टुकड़े आते, पल भर को उसे छिपा लेते और चले जाते।

आकाश की यह आँख मिचौनी डाल पर बैठी इस जोड़ी के दिलों के गुदगुदाने लगी। ज्योति अशक्त और विभोर होने लगी। युसुफ़ के कलेजे की धड़कन बढ़ने लगी, तेज़ और अधिक तेज़ होने लगी। अन जाने में ही ज्योति युसुफ़ के निकट, बहुत निकट पहुँच गई। युसुफ़ जाने कैसे ज्योति के पास पहुँच गया, एक दम पास पहुँच गया, सट गया।

ज्योति की गर्दन ऊपर आसमान की ओर उठी हुई थी। उसकी मदालस आँखें चाँद बादलों की आँख मिचौनी देख रही थीं। युसुफ़ की आँखें ज्योति की शान्त मुखाकृति, उठी, गोरी, सुडौल गर्दन और उभरा हुआ बक्ष स्थल देख रही थीं। बादल का एक टुकड़ा आया। उसने फिर चाँद को ढंक लिया। वह हटा तो युसुफ़ ने देखा ज्योति उसकी गोद में थी, उसके ओठ ज्योति के मुलायम पतले ओठों पर जमे हुये थे।

धीमे से ओठ हटा युसुफ़ ने फुसफुसाते हुये कहा,

"जोत, मेरी रानी !"

"प्रान !"

और दोनों के ओठ फिर मिल गये।

चाँद पर बादल का दूसरा टुकड़ा आ गया !

× × ×

सरदार राम उजागर सिंह और यशवन्त साथ ही लौटे। आकर जो समाचार इन्होंने युसुफ़ जाह बहादुर को दिया वह अच्छा न था। यद्यपि लाल साहब ने यह कहा कि वे शत्रुओं की ओर नहीं चले जायेंगे लेकिन साथ देने की बात वह टालते ही रहे। दूसरे ज़रियों से समाचार मिला कि लाल साहब ने अपने दो आदमी भेजे हैं। वे जाकर

फिरंगी फौज़ों से सम्बन्ध स्थापित करेंगे और लालसाहब की ओर से सुलह की बात चीत करेंगे। बदले में लाल साहब वह सब कुछ करने को तैयार हो जायेंगे जो फिरंगियों की ओर से उनसे करने को कहा जायेगा। इसी तरह की ख़बर यशवन्त को अपने घर के पुराने नौकर से भी मिली थी। सरदार राम उजागर सिंह निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि क्या किया जाय। जब यशवन्त उनके घर पहुंचा और सरदार साहब ने उसे बताया कि उनसे और लाल साहब से क्या बातें हुईं तो यशवन्त सिंह ने अन्तिम रूप से फैसला कर लिया कि सबेरा होते होते लाल कुलवन्त सिंह को हिरासत में ले लिया जाय।

युसुफ़ जाह बहादुर ने सारी बातें ध्यान से सुनीं। सरदार साहब की ओर मुड़कर उन्होंने कहा, "अब कोई बीच का रास्ता नहीं निकल सकता ?"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ। घर की फूट, वह भी ऐसे मौक़े पर, अच्छी नहीं है। लेकिन घर का भेदी सारे किये कराये पर पानी भी फेर सकता है। ऐसे भेदी के साथ उचित ही व्यवहार करना चाहिये। हिरासत के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं हैं। मगर इससे अपने ही कुछ लोगों में बदगुमानी फैल सकती है। आख़िर लाल साहब बाअसर आदमी हैं।" सरदार राम उजागर सिंह ने सिर खुझलाते आँखें नीची किये कहा।

यशवन्त को ये झोल झाल और दुविधा की बातें अच्छी नहीं लगीं। उसने कहा, "आपका यह ढंग, क्षमा कीजियेगा, मुझे पसन्द नहीं आया। दो चार दिनों में हम शत्रुओं से घिर जायेंगे। गाँव ही नहीं सारे ख़ित्ते के निवासियों के जीवन मरण का प्रश्न हमारे सामने है। हम व्यक्तियों के लिये सभी लोगों को बलिदान नहीं कर सकते। पिता जी बहुत बड़े आदमी हैं, यह मानता हूँ। वह मेरे पिता हैं, इसका ध्यान मुझे है। लेकिन मेरा पिता होना उनके लिये ढाल नहीं बन सकता। मैं आज इस गाँव का सरदार हूँ। अगर मेरी जगह कोई दूसरा होता

तो क्या वह भी इसी तरह असमंजस में पड़ा रहता। जो आदमी जितना ही असरदार होता है वह उतना ही अधिक ख़तरनाक भी साबित हो सकता है। युद्ध कालीन सौजन्य और सदाचार के नियमों और साधारण नियमों कुछ न कुछ अन्तर होता ही है। मैं आपसे यह साफ़ कहता हूँ कि इस समय ढील ढाल करना ख़तरनाक होगा। मैं अपनी आज्ञा से उन्हें बन्दी बनाना चाहता हूँ जिससे आम लोगों को यह पता चल जाय कि हम और सब कुछ सह सकते हैं लेकिन अपने बीच में देश द्रोहियों का रहना बर्दाश्त नहीं कर सकते। मेरे पिता जी अगर दुश्मनों का साथ देना चाहते हैं तो वह हमारे दुश्मन हैं और उनके साथ वही व्यवहार होना चाहिये जो देश द्रोहियों के साथ होता है। मैं अपनी इस राय में बिलकुल दृढ़ हूँ।"

यशवन्त के आवेश पूर्ण शब्दों ने परिस्थिति बदल दी। निर्णय और निश्चय की बातें होने लगीं।

"मेरी राय यह है कि उन्हें अभी घड़ी भर के भीतर ही हिरासत में ले लिया जाय। रात भर में जाने क्या कर देंगे वह!" यशवन्त ने ज़ोर दिया।

"इतनी जल्दी मत करो। ज़रा सोच समझ लो। इस वक़्त तुम जोश में हो इसलिये ऐसा कह रहे हो। लेकिन लाल साहब बुज़ुर्ग आदमी हैं। उनके आराम-तकलीफ़ का भी कुछ ख़्याल करना चाहिये हमें।" युसुफ़ जाह ने समझाया।

"मैं तुम्हारी यह बात बिल्कुल नहीं मानता। उन्हें अभी फ़ौरन गिरफ्तार कर हवालात में डाल देना चाहिये।" यशवन्त ने फिर कहा।

"अच्छी बात है क्षत्रिय पुत्र!" भावुक हो राम उजागर सिंह बोले, "कर्तव्य की वेदी पर आत्मीयों और स्वजनों का यह बलिदान तुम्हें विजयी बनावे, इस बूढ़े की यही मंगल कामना है।"।

"नहीं सरदार साहब ! यह ज़ुल्म है। जिस शख़्स के क़सूर के बारे में भी आपको ठीक इत्तला नहीं है, उसे इस तरह आधी रात हिरासत में ले लेना हर तरह से ग़लत है। मैं सरदार यशवन्त सिंह की राय से इत्तफ़ाक नहीं रखता। गुज़ारिश यह है कि आप उस बुज़ुर्ग को रात भर सुख से सो लेने दें। सबेरे सूरज निकलते निकलते आप ख़ुशी से उन्हें हिरासत में ले सकते हैं। चाहें तो रात ही में उनके घर के चारो ओर घेरा डाल दें, जिससे उनके फ़रार होने का कोई ख़तरा ही न रह जाय। मेहरबानी करके आप लोग मेरी राय मान लें।"

सरदार साहब ने यशवन्त की ओर देखा। वह चुप रहा। युसुफ़ जाह बहादुर का फ़ैसला स्वीकृत हो गया। अब सवाल उठा रंगपूर की तैयारी का। यशवन्त और ठाकुर साहब दोनों गाँव की मोर्चेबन्दी और दूसरी तैयारियों से बिल्कुल सन्तुष्ट थे। इन दोनों ने जो बयान युसुफ़ जाह बहादुर को दिये उससे उनको भी पूरा यक़ीन हो गया कि रंगपूर किसी से पीछे नहीं रहेगा। सभी पुरवों को मिलाकर कुल साढ़े आठ हज़ार की आबादी थी, जिसमें से लगभग एक हज़ार लड़ाके जूझने के लिये तैयार मैदानों में क़वायद कर रहे थे। यह निराशा की बात ही नहीं थी। एक एक छोटी से छोटी चीज़ का भी ध्यान रखा गया था। ख़ुद सरदार साहब ने जब कहा कि, "यशवन्त जैसा लायक़ और योग्य सरदार दूसरा नहीं हो सकता था" तो युसुफ़ की छाती दूनी हो गई। संकोच से यशवन्त ने तो सिर नीचा कर लिया लेकिन युसुफ़ ने कह ही दिया, "आख़िर हमारा ही दोस्त तो है न यश !"

युसुफ़ जाह ने सभी ख़ित्तों का पूरा समाचार सुनाया। यशवन्त को बड़ी ख़ुशी हुई। सरदार साहब ने कहा, "इस बार उन्हें छठी का दूध न याद आ जाय तो कहना।"

युसुफ़ जाह कुछ कहने ही जा रहे थे कि सामने से तेज़ भागते हुये दो घोड़सवार आते दिखाई दिये। सभी खड़भड़ा उठे, सब की

आँखें उधर लग गईं। सवार आकर बँगले के सामने रुके, घोड़े वहीं छोड़ तेज़ क़दमों से युसुफ़ जाह के पास पहुँच गये। झुककर सलाम किया और परवाना दिया।

"दुश्मन की फ़ौजें आ गईं। अभी यहाँ से चार कोस दूर हैं। सबेरा होते होते हमारे यहाँ लड़ाई छिड़ जायेगी। होशियार कहने के लिये ख़बर भेजी जा रही है। सरदार, उधोपूर।"

युसुफ़ ने सवारों से चिन्ह पूछा। पता चला वह ठीक आदमी थे। ज़बानी सभी हाल पूछा और कहा, "तुम वापस जाओ। थोड़ी देर में मैं पहुँचता हूँ। मेरा वहाँ इस वक़्त रहना ज़रूरी है।" सलाम कर सवार हवा से बातें करते निकल गये।

"यश, अब वक़्त आ गया। चौबीस, अढ़तालीस घण्टों की देर है। अगर वह मोर्चा न सँभाल पाये तो बारी रंगपूर की है। मैं हिदायत भेज रहा हूँ कि मझगवाँ और समस्तीपूर की भी चौथाई फौजें रंगपूर की टुकड़ी के साथ ऊधोपूर सुबह होते होते पहुँच जाँय। अब तुम जानो। तुम मेरे दाहिने हाथ हो। मेरी लाज रखना। और ठाकुर साहब! आपसे फिर वायदा करता हूँ कि फिरंगी हमारे ख़ित्तों में तभी क़दम रख सकेंगे, जब कि वे हमारी लाशों पर से गुज़र चुकें। आप जाइये, कल का सबेरा लाल होगा, हमारी आँखें भी उस वक़्त लाल होंगी। आप बुज़ुर्गों के मुँह की लाली हम रखेंगे।"

उधर सरदार साहब और यशवन्त चले, इधर युसुफ़ जाह बहादुर ने अपने दूतों को ठिकाने ठिकाने भेजना शुरू किया। सबको हिदायतें रवाना कर युसुफ़ जाह हथियार से लैस हो पूरे साज बाज के साथ दस सवारों को ले ऊधोपूर की ओर चले। लेकिन रास्ते में सरदार भगवान सिंह का घर पड़ा तो वह ठिठके। सवारों को थोड़ी दूर आगे बढ़ इन्तज़ार करने के लिये कह युसुफ़ जाह घोड़े से उतर पड़े। दरवाज़े पर पहुँच ख़बर कराई। मालूम हुआ ठाकुर भगवान सिंह थोड़ी देर पहिले

सरदार राम उजागर सिंह और लाल यशवन्त सिंह के साथ घोड़ेपर चढ़कर कहीं चले गये।

युसुफ़ जाह झिझके, फिर निश्चय किया ज्योति से बिना मिले जाना ज़्यादती होगी। अभी बहुत समय है। थोड़ी देर यहाँ रुका जा सकता है। उन्होंने नौकर से कहा, "ज्योतिर्मयी से कहो मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। मैं यहीं खड़ा हूँ।"

नौकर भीतर गया, वापस आकर बोला, "बीबी जी आपको भीतर बुला रही हैं।"

"कह दो जल्दी है। जाना है। ज़रा देर के लिये आ जाँय।"

नौकर ने फिर आकर कहा, "कहती हैं, भीतर आना होगा।"

युसुफ़ खिझा, फिर मुस्करा पड़ा। 'अजब ज़बरदस्त लड़की है' बड़ाबड़ाता हुआ भीतर गया। देखा पलंग पर सुफ़ेद चादर बिछी हुई है। सुन्दर भड़कीले कपड़ों में सजी हुई ज्योति सामने खड़ी मुस्करा रही है। इशारा हुआ, 'बैठ जाइये।"

युसुफ़ पलंग पर बैठ गया।

"इसी पर मैं सोती हूँ। आप इस समय युद्ध करने जा रहे हैं। मुझे ताऊ जी ने सारी बातें जल्दी जल्दी बताईं और भैया के साथ कहीं चल दिये। मुझे सब कुछ मालूम है। मैं आपका अधिक समय न लूँगी। मेरे बिस्तर पर थोड़ी देर बैठ कर आप जाँय यही मेरी इच्छा थी, इसीलिये आपको कष्ट दिया।"

युसुफ़ टुकुर-टुकुर ज्योति की ओर देखता रहता। वह चंचल हो रही थी। दो घड़ी पहिले आनन्द सागर में ग़ोते लगाने वाली ज्योतिर्मयी, राजपूत की बेटी, इस समय अपने साजन को युद्ध के लिये बिदा करने वाली थी। इसलिये वह चंचल थी। बातें करती जाती थी और थाली में घी का दिया, रोली, अक्षत भी सँवार सँवार का सजाती जा रही थी।

थाली सजाकर ज्योति ने अपने को सजाया। जल्दी जल्दी अपने सारे गहने पहिने। माथे में बिंदिया लगाई और देखते देखते वह आरती की थाली ले सामने खड़ी हो गई।

"उठो, अब समय नहीं रहा। यह लो रोली, इसे मेरी माँग में डाल दो। उठो देर न करो।" विनय पूर्वक ज्योति ने आग्रह किया।

युसुफ़ ने सब कुछ देखा सुना। वह कब सुध बुध खो चुका था, कहा नहीं जा सकता। ज्योति के कहने पर वह उठा, शान्ति पूर्वक ज्योति के झुके हुये सिर की ओर हाथ बढ़ाया और उसकी माँग में रोली भर दी। युसुफ़ फिर सीधा खड़ा हो गया।

ज्योति ने आरती उतारी। रोली में पानी मिलाया, युसुफ़ के माथे पर उसे लगाया, अक्षत लगाया और थाली ज़मीन पर रख दी।

"एक बात और।" ज्योति ने कहा।

"मुझे अपनी कटार देते जाओ।"

"क्या करोगी ?"

"ज़रूरत के समय काम आयेगी।"

युसुफ़ ने अपनी कमर से कटार निकाली और उसे ज्योति के फैले हुये हाथों पर धर दिया। ज्योति ने कटार चूमी और उसे अपनी कमर में खोंस लिया।

"अब तुम जा सकते हो।"

"जाँऊ, बिदा कर रही हो ?"

"हाँ, जाओ, यह विश्वास करके जाओ कि मैं तुम्हारा नाम ऊँचा करूँगी। यह समझकर जाओ कि जब तक बोटी बोटी न कट जाय, फिरंगी

यहाँ क़दम नहीं जमा सकते। मेरे ऊपर यक़ीन रखो, मैं दग़ा न करूँगी।" आवेश से ज्योति के ओठ काँपने लगे।

"जाता हूँ जोत, मगर एक बात कहना चाहता हूँ। मालूम नहीं अगले एक दो दिन में क्या होगा। मैंने ग़लती की, मैं तुम्हें पहिचान न सका। आज एक दो पल छिन में ही मैं तुम्हें अच्छी तरह जान और समझ सका हूँ। ग़लती इन्सान से ही होती है। उस दिन बाग़ वाले वाक़ये के बाद से मेरे दिमाग़ की कैफ़ीयत ही कुछ ऐसी हो गई थी कि सही ग़लत कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मैंने तुम्हारे साथ रुखाई का सलूक किया। तुम्हें उससे चोट पहुंची होगी। उसके लिये मुझे माफ़ कर दो। मालूम नहीं अब हम तुम कब, कैसे, कहाँ, मिलेंगे? माफ़ कर दोगी तो मेरा बोझ उतर जायेगा।"

"अब तुम जाओ। देर हो रही है। ऐसी बातों का यह वक़्त नहीं है। जंग के मौक़े पर अपने दिल और दिमाग़ पर क़ाबू रखना चाहिये। जाओ, यह मौक़ा मोहब्बत का नहीं, जंग करने का है। हाँ, मेरी माँग के लाल सीन्दूर को मत भूलना। तुम्हारी यह कटार में मेरी रक्षा करेगी। मैं राजपूत की बेटी हूँ। साजन के साथ सुख से सेज पर सोना और जौहर के समय चिता ज्वाल की लपटों से लिपटना भी जानती हूँ। युसुफ़, मुझे गर्व है कि मैं इस ख़ित्ते के प्रधान सेनापति युसुफ़ जाह बहादुर की स्त्री हूँ। मैं अपने इस पद की रक्षा प्राण-पण से करूँगी। अब तुम जाओ। मेरी याद वहाँ समर भूमि में आये तो भी भुलाने की कोशिश करना! जाओ मेरे साजन!" ज्योति की आँखों में रोके हुये आँसू छलछला आये।

ज्योति का हाथ अपने हाथों में ले युसुफ़ ने चूम लिया। उसकी पीठ थपथपाई। सिर पर हाथ भरा फेरा।

"अच्छा।" युसुफ़ आगे न बोल सका।

"जाओ।" ज्योति कहते ही काँप गई।

युसुफ़ बाहर आकर घोड़े पर छलाँग मार कर चढ़ गया, एड़ लगाई और सरपट निकल गया।

ज्योति चुपचाप आकेली खड़ी देखती रही। युसुफ़ की परछाईं भी धीरे धीरे धूमिल पड़ती जा रही थी, घोड़े की टापों की प्रति ध्वनियाँ दूर और अधिक दूर, महीन और अधिक महीन होती जा रही थीं। पीछे की गर्द उड़ना बन्द हो गई तो ज्योति पलट आई। अपने बिस्तर के पास खड़ी कभी वह अपनी सूनी सेज देखती जिस पर अभी युसुफ़ बैठा हुआ, कभी आसमान में ढलते हुये चाँद की ओर।

—: ० :—

# ६

अँधेरी, अजानी राह, पेड़ों का झुरमुट, आसमान में काले बादल, बूँदें गिर रही थीं टप्-टप्। साँय साँय हवा और धीमे धीमे बातचीत! ऐसे कि कोई सुन न ले। दूर पर घोड़ा बँधा था। कभी कभी उसके सुम की आवाज़ आ जाती खस् से! दो व्यक्ति एक दूसरे के बिल्कुल नज़दीक सटे हुये बातें कर रहे थे, फुसफुसा कर। यद्यपि आस पास कोई दूसरा न था, फिर भी इनके ढंग से पता चलता था कि ये कोई अत्यन्त गुप्त बातें कर रहे थे।

"तुम्हें पता चल गया कि नहीं अभी?"

"अभी तो नहीं।"

"सुबह होते होते फिरंगी फ़ौजें गाँव को घेर लेंगी।"

"सुबह होते होते!"

"हाँ।"

"हमारी फ़ौजें बिल्कुल तैयार हैं?"

"हाँ, लेकिन अभी वह नहीं लौटे।"

"युसुफ़ भाई नहीं लौटे!"

"हाँ, ख़राब ख़बरें आ रही हैं।"

थोड़ी देर दोनों चुप रहे।

"ऊधोपूर और समस्तीपूर में हार हो गई। दुश्मन की आग उगलतीं तोपचियाँ हमारे सिपाहियों को भून डालती हैं। फिरंगी तलवार से

नहीं लड़ते। उनके पास तोपचियाँ हैं, बन्दूकें हैं। हमारे पास बन्दूकें बहुत कम हैं। जो हैं उनमें कारतूस भरने में देर लगती है। उनकी मार भी दूर तक नहीं होती। फिरंगियों की बन्दूकें हमारी बन्दूकों से अच्छी हैं।"

"अब क्या होगा ?"

"लाल साहब दुश्मनों से मिल गये। उस रात जब उन्हें हिरासत में लेने हमारे सिपाही पहुंचे तो वह भाग चुके थे। सुना है वह दुश्मनों के साथ गाँव की ओर आ रहे हैं। लेकिन घबराने की कोई बात नहीं। मझगवाँ के पठान और जुलाहे सारे के सारे यहीं आ रहे हैं। रंगपूर की सेना के साथ मिलकर वे यहीं फिरंगियों का सामना करेंगे। उधर से समस्तीपूर और ऊधोपूर की बची खुची सेना भी यहाँ आ जायगी। सोलह सौ सिपाहियों की यह सेना होगी। कल गहरी घमासान होगी।"

"बाऊ जी कहाँ हैं ?"

"सरदार साहब के साथ मैदान में हैं। यशवन्त सिंह उनकी टोह लेने एक ख़ास टुकड़ी के साथ गये हैं। घड़ी भर में वापस आ जायेंगे। और, हाँ नदी की नावों की ख़बर रखनी है। भोर होने के पहिले सभी जवान औरतें और बच्चे उस पार पहुंच जाँय। इसमें देर न हो।"

"मैंने उधर का इन्तज़ाम देखा है। कोशिश जारी है। पाँच बजते बजते गाँव के सभी पुरवे औरतों बच्चों से ख़ाली हो जायेंगे। गाड़ियाँ भी ठीक हैं।"

"शाबास, बहुत अच्छा संगठन किया है तुमने। अब किधर जाओगी ? सिपाहियों के ख़ेमे में !"

"नहीं, उधर कोई काम नहीं है। बाबा ने घड़ी भर बाद बुलाया था घर ही पर। देखें क्या ख़बर लाते हैं !"

"अच्छा, मैं जाती हूँ। जल्दी ही मिलूँगी।"

"जाओ, जल्दी मिलना।"

और सवार घोड़े पर चढ़ सरपट निकल गया।

घर वापस आ ज़ुलेख़ा ने अपने कपड़े उतारे। हाथ पाँव सूखे कपड़े से पोछे और अब्बा का इन्तज़ार करने लगी।

सामने टिमटिमाती डबरी जल रही थी, जो रोशनी से ज़्यादा धुँआ उगल रही थी। एक सूखी हँसी हँसकर ज़ुलेख़ा बड़बड़ाने लगी, "अब आएगा मौक़ा। वह मैदान में अपनी दिलेरी, हिम्मत और क़ुर्बानी की मिसाल पेश करेंगे। मैं अपना काम करूँगी। ऊँह! वह औरत भी क्या जो अपने ख़ाविन्द का साथ क़ब्र तक न दे सके! फूलों के सेज पर, साजन की गोद में सोना आसान है, मोर्चे पर डटकर मौत को दावत देना आसान नहीं। मैंने यह मुश्किल, काँटों भरी राह चुनी है। उन्होंने मौत को चुनौती दी है। उन्हें यक़ीन है कि मैं पीछे नहीं हटूँगी। जोत अपना फ़र्ज़ कर रही है। मैं ही क्यों पीछे रहूँ। ऊँह, क्या होगा? आ जाते बाबा तो अच्छा था! कुछ ख़बर मिलती!"

डबरी पास कर, टूटा सा शीशा निकाल ज़ुलेख़ा ने अपना मुँह देखा। आज वह अपने को ही बहुत ख़ूबसूरत लग रही थी। उसका सलोनापन बढ़ गया था। चेहरे पर एक रोशनी थी, आँखों में तेज़ चमक। वह मुस्करा पड़ी। 'इस वक़्त कहीं वह मुझे देख पाते!' वह सोचने लगी।

बाहर बारिश की बूँदें मोटी पड़ती जा रही थीं। ज़ुलेख़ा ने डबरी ताखे में रख दी। वह दीवार की ओर पीठ किये उसी के सहारे खड़ी सोचती रही। रोशनी उसके चेहरे के आधे हिस्से पर पड़ रही थी। वह बाबा का इन्तज़ार करती रही।

थोड़ी देर में घोड़े की टाप सुनाई पड़ी, जैसे वह वहीं उसकी

झोपड़ी के पास आकर रुक गई हो। उसने डबरी उठाकर बाहर की ओर झाँका। अँधेरे में कोई छाया सी दिखाई दी। छाया उसकी और बढ़ी। ज़ुलेख़ा सहमी सी डबरी लिये खड़ी रही। यशवन्त की शक्ल साफ़ दिखाई दी तो उसकी जान में जान आई।

"बाबा हैं ?" अन्दर आते हुये यशवन्त ने पूछा।

"नहीं, अभी तो नहीं आये।"

"अच्छा, मैं फिर आऊँगा।" यशवन्त की आवाज़ काँप रही थी।

"आप ऐसे घबराये हुये क्यों हैं ? युसुफ़ भाई की ख़बर मिली ?"

"नहीं।"

"तब ?"

"ज्योति मिली थी तुमसे ?"

'हाँ।"

"फिर मिलेगी ?"

"हाँ, घड़ी भर बाद।"

"उससे कुछ मत कहना। जो ख़बर मिली वह अच्छी नहीं है। शायद युसुफ़ घायल और बेहोशी की हालत में गिरफ्तार हो गया। उसको छुड़ाने के लिये हमारे आदमी गये हैं। किसी भी क़ीमत पर उसे छीन लाने की कोशिश की जायेगी ! एक युसुफ़ के पीछे पाँच सौ सिपाही कट मरेंगे।"

"आह !" सर्द और करुणोत्पादक चीत्कार, और उसके बाद मूर्छा। ज़ुलेख़ा ज़मीन पर गिर पड़ी।

झपट कर यशवन्त ने उसे उठाया। मुँह धुलाया। हवा की। ज़ुलेख़ा होश में आई तो वह यशवन्त की गोद में थी।

"मेरी रानी, इतनी कमज़ोर !" यशवन्त की आँखों में आँसू छल छला आये।

"नहीं, नहीं, कुछ नहीं।" फिर मुस्कराने की कोशिश करती हुई ज़ुलेख़ा ने कहा।

"सरदार यशवन्तसिंह की बहिन, विधवा नहीं हो सकती। ज़ुलेख़ घबराओ नहीं। युसुफ़ का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैं ग़द्दार बाप का बेटा हो सकता हूँ, लेकिन ग़द्दार दोस्त नहीं। तेरी ज्योति की जीवन ज्योति बुझेगी नहीं !

"सच !" ख़ुशी से ज़ुलेख़ा रो पड़ी।

"हाँ सच, यक़ीन रखो। अब जाता हूँ। सरदार साहब मेरी राह देखते होंगे। ठाकुर साहब से भी अभी मिलना है।"

"अच्छा जाओ, लेकिन सुनो। एक बात बताओ। मैं आज कैसी लग रही हूँ ? मुझे लगता है कि मैं आज बहुत ख़ूबसूरत मालूम पड़ रही हूँ। क्या यह सच है ?"

यशवन्त चुप रह गया। ज़ुलेख़ा क्या कह रही है ?

'बताओ, मैं कैसी लग रही हूँ। क्या मेरा सलोनापन बढ़ नहीं गया है ? मेरी ओर देखो।"

यशवन्त फिर भी चुप रहा। वह सहमता जा रहा था। ज़ुलेख़ा यशवन्त के अंक से उतर आई। एक क्षण चुपचाप खड़ी रही फिर आगे बढ़ी और यशवन्त का माथा चूम लिया। "अब तुम मेरे ओठ चूमो, उठो, आओ मेरे पास।" आज्ञा दी ज़ुलेख़ा ने।

यशवन्त उठा और दोनों के ओठ मिल गये।

"अब तुम जाओ। देर न करो। तुम अपना काम करो। मुझे अपना काम करना है।"

यशवन्त बाहर आ गया। ज़ुलेख़ा डबरी लिये दरवाज़े पर खड़ी रही। घोड़े की टाप दूर और अधिक दूर होती गई।

× × ×

"जूली, ज़रा देर हो गई मुझे। अभी फिर वापस जाऊँगा।" कहते हुये दीनू भीतर आया। "जी में आता है, इस झोपड़ी में आग लगा दूँ। फिर सोचता हूँ, तू कहाँ रहेगी? मैं अब कुछ घन्टों का मेहमान हूँ। मेरी ज़िन्दगी के अगले कुछ घन्टे बड़े क़ीमती हैं। उनको ख़राब न करूँगा। युसुफ़ जाह शायद नहीं रहे। बड़े सरकार के घर का चिराग़ गुल हो गया। और मैं ज़िन्दा हूँ। ख़ैर, कल, कल ही सब कुछ हो जायेगा। कल बदला लिया जायेगा। उनका, तुम्हारा, हमारा सब का बदला लिया जायेगा। यशवन्त ने मुझे यह कटार दी थी। तू इसे रख ले। मैं इसका क्या करूँगा। मेरे लिये, मेरे चर्ख़े की तकुली काफ़ी है। कहाँ है मेरा चर्ख़ा, करघा? और, अब उनका क्या काम!"

बूढ़ा उठा, कोठरी से अपना चर्ख़ा लाया, करघा लाया, डबरी का तेल उस पर डाला और उनमें आग लगा दी। भक् भक् कर आग की लपटें उठने लगीं। "जल जाओ, ख़ाक़ हो जाओ। मेरी ज़िन्दगी के मुर्दा, बेजान साथियो! मुझे अब तुम्हारी ज़रूरत नहीं, आः हा, हा हा, जलो, जल्दी जल्दी जलो। मुझे तुम्हारे लोहे की ज़रूरत है।" दीनू पागल की तरह ज़ोर से हँसा, तालियाँ पीटीं, फिर हँसा और धीरे धीरे ख़ामोश होने लगा।

"अब ठीक है। बेजान मुर्दों से क्या दोस्ती! कैसी दोस्ती जिनका ज़माना गुज़र गया उनकी लाश कन्धे पर ढोने से क्या फ़ायदा? मैंने ठीक किया जूली। जूली, मैंने बिल्कुल ठीक किया। ओह!"

बूढ़ा बड़बड़ाया और मौन हो गया। आँखें स्थिर हो गईं। चेहरा मुर्दों जैसा सख़्त, बेजान, स्थिर हो गया।

ज़ूली खड़ी खड़ी सब देखती रही।

"जाता हूँ बेटा, ख़ुदा हाफ़िज़। ख़ुश रहो, आ सकूँगा तो आऊँगा, नहीं जो सबकी ख़बर रखता है, वह तेरी भी ख़बर रखेगा। ख़ुदा हाफ़िज़!" बिना पीछे मुड़े देखे बूढ़ा चला गया घटाटोप अंधकार में। वह चला जा रहा था और घनी अँधेरी रात उसे अपने काले मोटे पर्दे में ढँके जा रही थी। बूढ़ा अँधेरे में गायब हो गया, जैसे अँधेरा उसे निगल गया हो!

× × ×

पूरबी क्षितिज पर लाली छाने लगी। कुछ कुछ धुँधली अँधियाली उसके ऊपर उभरती फैलती लालिमा! रक्ताभ वातावरण, मन्द समीर और चिड़ियों का चहचहाना। चारो ओर अत्यन्त शान्त गंभीर और गहन दृश्य। लगता था किसी भयानक दुर्घटना की भूमिका बन रही है, किसी रंगमंच के पीछे रंगीन पर्दा लटकाया जा रहा है।

नदी तट पर केवल इनी गिनी नावें रह गई थीं। बच्चों और औरतों को लेकर दूसरी नावें कभी का तट छोड़ चुकी थीं। गाँव में बच गई थीं बुढ़ियाँ और बूढ़े, जो कुछ न कर सकते थे, और जिन्हें मार कर भी कोई कुछ न पा सकता था।

गाँव से दूर, धाप भर से कुछ ही आगे, रंगपूर की सेनायें डटी हुई थीं। उनके दाहिने बायें मझगवाँ, समस्तीपूर और ऊधोपूर की बची सेनायें शंखनाद और रणभेरी का इन्तज़ार कर रही थीं। गाँव और सेनाओं में सम्बन्ध स्थापित रखने वाले घोड़सवारों, गुप्तचरों और सन्देश वाहकों का ताँता लगा हुआ था। उनके घोड़ों के पीछे उड़ने वाली धूल की धुँधली छाया बता रही थी कि सरगर्मी बहुत है।

पौ फटा और शंखनाद और डंके की चोटें आने लगीं। सिपाहियों के मुक्त कण्ठ से निकले गगनभेदी तुमुल नारे 'बम-बम, हर-हर, महादेव' और 'अल्ला हो अकबर' की प्रतिध्वनियाँ गाँव तक आने

लगीं। लगा, पृथ्वी काँप उठी है, पेड़-पालो हिल उठे हैं। आसमान में भयभीत पक्षी उड़ते भागते जा रहे थे। गाँव के पशु भी अपने अपने खूँटे तोड़ाने लगे।

युसुफ़ जाह बहादुर के बँगले से निकल सरदार यशवन्त सिंह और उनके दस अंग रक्षकों की टोली, नंगी तलवार हवा में लहराती, हवा से बातें करती उड़ती चली और देखते ही देखते आँखों से ओझल होगई। उनके पीछे गर्द उड़ी और उड़कर रह गई।

और फिर वही नारा लगा, क़ौमी इत्तहाद और जाँफिसानी का नारा, प्राणार्पण और आत्मदान की चुनौती का भार लिये, सिर फिरे नर केहरों के कठोर कण्ठों से कड़कड़ाता चीत्कार करता— 'बम-ब्रम हर-हर महादेव' और 'अल्ला हो-अकबर'।

सेनापति सरदार यशवन्त सिंह रणभूमि में आगये!

सब की तलवारें, किरचें, संगीनें ऊपर उठ गईं। तोपची से धड़ाके की आवाज़ आई। चारों तरफ़ धुँआ छाने लगा। दुश्मन की फ़ौज से जवाबी गोले दगने लगे। घोड़े हिनहिनाये, उनके अगले सुम ज़मीन खोदने लगे, जैसे वे आगे बढ़ने के लिए बेताब हो रहे हों।

प्राची में लाल सबेरा हुआ। क्षितिज की छोर पर आग का गोला उभरा, सुनहली किरणें चारो ओर दौड़ गईं, तलवारों, किरचों, संगीनों की चमक चौगुनी बढ़ गई। चारो ओर रण का साज, युद्ध के बाजे और संघर्ष के नारे। सेनापति सरदार यशवन्त सिंह की आज्ञा हुई, "बढ़ो!"

तोपचियों ने आग उगले, घोड़सवार सरपट भाग निकले और पैदल तेज़ चाल से अपने हथियारों को संभाले, उन्हें हवा में भाँजते चले। यही घड़ी, यही बेला योधाओं की शूरता और कुशलता के परिचय की थी। दिल का अरमान निकालना था, पूर्वजों के गौरव की रक्षा करनी थी, अपनी माँ-बहिनों की लाज बचानी थी, अपने दूध की सचाई

प्रमाणित करनी थी। ऐसा अवसर भी कहीं बार बार आता है ? और, बढ़ चले ये शूरवीर अपनी अपनी टुकड़ियों, क़तारों की व्यवस्था के अनुसार।

सामने केवल कुछ ही दूर पर शत्रु सेना सजी बजी खड़ी थी। ये बढ़े तो वह भी बढ़े। क्षण दो क्षण में ही मुठभेड़ होगी। जुट जायेंगे, जूझ जायेंगे। दोनों दलों ने एक दूसरे को देखा। दोनों का जोश दूना चौगुना बढ़ा। दोनों आगे लपकने लगे एक दूसरे को काट डालने, धराशायी कर देने के लिये। जो वीर है, जो हिम्मत वाला है, जो सिर हथेली पर लेकर चलता है वही विजय कर सकता है, उसी का पानी रह सकता है। इसलिए दोनों दलों ने एक दूसरे पर टूटते बाझ की तरह हमला कर दिया। एक बार फिर आवाज़ आई, 'अल्लाह हो-अकबर' 'हर हर-महादेव !' युद्ध छिड़ गया।

देखते देखते मास के लोथड़े, कटे फटे हॉथ-पैर, रुण्ड-मुण्ड धरती पर गिरने लगे। चीख़-पुकार, आह-कराह, मारो-काटो, बढ़ो, भागो, आह-ऊह की ध्वनियाँ चारो ओर से आने लगीं। लड़ाके लड़ते ही गये, धरा पटती ही गई और धूल भी उड़ती ही गई।

मध्याह्न का सूर्य आसमान में चमकने लगा अपनी पूरी कला और प्रखरता के साथ ! अब तक रंगपूर का पलड़ा भारी था। वे स्वरक्षा में लड़ रहे थे। युद्ध भी उनकी जानी पहिचानी ज़मीन पर हो रही थी। इसलिए अभी तक जीत उन्हीं के हाथों में रही। उनकी हिम्मत बढ़ती गई। उनका जोश बढ़ता गया। उनकी छाती फूलती गई। अधिक से अधिक बल लगा, कुशलता का प्रदर्शन कर वे जूझते गये।

दिन ढलते ढलते लगा कि वे विजयी होंगे। नारे देते, शोर मचाते, जय बोलते वे लड़ते जा रहे थे। सहसा पीछे से आवाज़ आई 'मारो मारो।'

यशवन्त ने पीछे मुड़ कर देखा। वह समझ गया शत्रु की सेना की एक टुकड़ी ने पीछे से हमला कर दिया था और ठाकुर भगवान सिंह

की टुकड़ी उससे भिड़ी हुई थी। यशवन्त ने घोड़ा मोड़ा और पलक मारते उस टुकड़ी के बीच में पहुंच गया। सैनिकों ने यशवन्त को देख तो हर्षातिरेक में चिल्ला उठे, 'सरदार यशवन्त सिंह की जय।' अपनी टुकड़ी को चीरता यशवन्त तीर की भाँति आगे निकलता चला गया उसकी फटी फटी आँखों ने देखा ठाकुर साहब को गहरा घाव लगा और वह घायल हो नीचे ज़मीन पर आ गये। यशवन्त क्रोध से तिलमिला उठा जब उसने देखा ठाकुर साहब की हत्या उसके पिता की तलवार से हुई थी। वह उन्मत्त हो अपने पिता पर झपट पड़ा।

"यशवन्त!" वार बचाते हुये लाल साहब ने कहा, "तू अपने पिता पर हमला कर रहा है!"

'ग़द्दारों की यही सज़ा है।" कहते कहते यशवन्त ने तलवार चलाई और लाल साहब का सिर धड़ से अलग होगया। देशद्रोही! पिता बनने चला है! कायर!"

लाल साहब के गिरते ही उस टुकड़ी में भगदड़ मच गई।

सरदार राम उजागर सिंह सब से आगे थे। उनको देख दूसरे सैनिक वैसे ही आगे बढ़ते जाते थे जैसे अपना झण्डा देख उन्मत्त तलूस, जैसे प्रकाशस्तम्भ देख समुद्र की चंचल लहरों में थपेड़े खाता हुआ जलयान! लेकिन बन्दूक की अंधी गोलियों के सामने वीरता और युद्ध कला-प्रवीणता कहाँ चलती है? गोलियों की बौछार ने उनके लोहे जैसे शरीर को बेध दिया। प्राण वायु विहीन जीर्ण शरीर माँस का लोथड़ा बन ज़मीन पर लुढ़क गया।

"सैनिको! पठानो! राजपूतो! चौहानो! बढ़ो, अब समय आ गया, या तो इस पार या उस पार।" पागल, उन्मत्त, विह्वल, सरदार यशवन्त सिंह पिल पड़े। ख़ून के प्यासे उनके सैनिक भी अभिनव तांडव करने लगे। एक बार फिर युद्ध में गर्मी आ गई। यशवन्त पर चारों ओर से हमले हुये। लेकिन कोई उन वारों को काट देता।

तलवार चलाते चलाते यशवन्त ने देखा, राजपूती बाने में ज्योति उसके साथ साथ आगे बढ़ती जा रही है।

"ज्योति तू !"

'हाँ, मेरे वीरन, मेरे लाल !"

"ख़ैर, अच्छा ! चल साथ-साथ। अन्त तक साथ ही चल।"

और दोनों बहिन भाई बढ़ते गये, बढ़ते गये !

सूरज डूबने लगा। एक बार फिर यशवन्त ने जोर लगाया अपने सैनिकों को आख़िरी बार ललकारा और आगे बढ़ा। दोनों ओर से गोलियाँ चलीं। यशवन्त ने देखा सामने दीनू शेख़ की लाश लुढ़क गई। उसने ज्योति की ओर आँख उठाई। ज्योति ख़ून से तर थी लेकिन तलवार चलना बन्द नहीं हुआ था। उसने सामने देखा एक गोली उसके सीने पर आ लगी, संभालते-संभालते, दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी ! और भाई बहिन की यह जोड़ी वहीं दीनू जुलाहे के पास आ गिरी।

सरदार न रहे, शत्रु का आक्रमण तेज़ और अधिक तेज़ होता जाय तो सैनिकों का अधीर होने लगना आसान हो जाता है। गोलाबारी तेज़ होने लगी और सेना में भगदड़ मच गई।

उसी समय पतली महीन आवाज़ में किसी ने पुकारा, "अरे, कहाँ भागते हो ? कहाँ जा रहे हो ? तुम्हारा सरदार यहाँ पड़ा है और तुम खेत छोड़कर भाग रहे हो !" लेकिन उस कातर, क्षीण पुकार को कोई न सुन सका। तोपों की गड़गड़ाहट, गोलियों की सनसनाहट और भाग दौड़, हो हल्ले में इस करुण, चीत्कार को कौन सुनता !

अपनी सेना भाग निकली।

दुश्मन जीत गये।

सूरज डूब गया।

× × ×

भयानक अँधेरी रात थी। दुश्मनों की गोलियाँ सिर पर से सन् सन् करती निकल जातीं। अब भी कभी कभी तोपचियों के दगने की आवाज़ आती, धुँआँ उड़कर आसमान में छा जाता आग का शोला भभक उठता।

ज़ुलेख़ा को कम चोट आई थी। लेकिन हाथ और जाँघ को अगर वह कसकर न बाँध लेती तो ख़ून अधिक बह जाता और वह भी अशक्त हो बेहोश हो जाती। अपने को भली भाँति सँभाल ज़ुलेख़ा ने एक एक को उठाना, हिलाना, डुलाना शुरू किया।

दूर पर दुश्मनों की टोलियाँ चोर मशाल जला घायलों को देख रही थीं। हथियार-सामान बटोरतीं, लाशों को ठोकरें लगातीं ये टोलियाँ चारों ओर घूम रही थीं। अगर कोई ज़िन्दा घायल मिल जाता तो उसे संगीन चुभाकर बेजान भी कर देतीं।

ज़ुलेख़ा मृत्यु का यह भयानक दृश्य अपनी आँखों से देख रही थी। हमेशा की कमज़ोर-दिल भावुक ज़ुलेख़ा इस समय ठस, पत्थर हो गई थी। उसके हृदय के कोमल तार बेकाम और निर्जीव हो गये थे, इसलिये अपनी आँखों से वह सामने का दारुण दृश्य निरपेक्ष और उदासीन हो देखती रही।

उसे किसी बात की, किसी व्यक्ति की पर्वाह नहीं थी। पास में पड़े यशवन्त, बाबा, ज्योति इनकी लाशें ज़ालिम दुश्मनों के हाथों में न जाँय, उनके बूटों से न कुचली जाँय अब केवल यही कामना थी, उसकी।

उसने आँखें गड़ाकर देखी। बाबा औंधे पड़े थे। नाक के पास झुकी, उनकी साँस चल रही थी, रुक रुक कर फिर तेज़। उसने बाबा के सिर पर हाथ रखा। बूढ़ा चौंक पड़ा। कराहते हुये उखड़ती साँसों पर ज़ोर डाल बोला, "यहाँ तो मरने दे आराम से, अरे तू कौन सी डायन है!"

"मैं हूँ बाबा, ज़ूली, तुम्हारी बेटी !" कान में फुसफुसाती हुई ज़ुलेख़ा बोली।

"अरे तू यहाँ भी आ गई, अरे बेटी ! मौत का यह भयानक मंज़र और तू ! ओफ़।"

"चुप रहो बाबा, ज़्यादा न बोलो, ज़ोर पड़ेगा। मैं धीरे धीरे तुम लोगों को यहाँ से हटाना चाहती हूँ।" कहती ज़ुलेख़ा ने दीनू के मुँह पर हाथ धर दिया। दीनू चुप रहा। ज़ुलेख़ा सरकती सरकती ज़मीन से लगी लगी टटोलने लगी। उसके हाथों से ज्योति के पैरों की उँगलियाँ छू गईं। उसने अपने हाथ ऊपर की ओर बढ़ाये। देखा ज्योति की साँस आ जा रही थी। उसकी ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। ज्योति मरी नहीं थी, ज़िन्दी थी।

पास जा मुँह से मुँह सटा उसने कान में पुकारा, "जोत, आँखें खोलो।" ज्योति हिली डुली, अंगड़ाई लेने की कोशिश की जैसे सो के उठी हो, लेकिन उठ न सकी। ज़ुलेख़ा ने उसे थपथपाया। कान में स्पष्ट शब्दों में कहा, "युसुफ़ भाई साहब को हमारे सिपाही छीन कर वापस ले आये। वह बेहोश थे। लेकिन कोई ख़तरा नहीं है। नदी उस पार एक ख़ास जगह भेजे गये हैं। मैं यही ख़बर देने आ रही थी कि यहाँ यह सब हो गया।"

मशाल वाले धीर धीरे पास आते जा रहे थे। लेकिन अभी यशवन्त को ढूँढ़ना था। यहीं पर बातें ख़त्म कर वह उठी और यशवन्त को ढूँढ़ने लगी। यशवन्त को पाने में देर न लगी। वह ज्योति के पास ही पड़ा था। कभी कभी बहुत धीमे से वह कराह उठता। बहुत अधिक ख़ून बह जाने के कारण वह बोल नहीं सकता था। ज़ुलेख़ा की आवाज़ उसे ऐसी लगी, गोया सपना देख रहा हो।

ज़ुलेख़ा ने उसका सिर अपनी गोद में ले लिया। थोड़ी देर सिर सहलाने के बाद उसने बदन पर हाथ फेरा, हाथ पाँव को सहलाया।

सारे कपड़े ख़ून से लथपथ थे। लगता था घाव बहुत से हैं, ख़ून ज़्यादा निकल गया है। उसने यशवन्त का माथा चूम लिया। चाहती थी उसके बदन पर लोट लोट कर रोये चिल्ला कर, चीख़कर, गला फाड़ कर! लेकिन उसने अपने को संभाला और यशवन्त को सचेत करने के प्रयत्न में कहने लगी, "घबड़ाओ नहीं, मैं यहाँ हूँ, जोत यहीं हैं, बाबा भी यहीं हैं। सब ज़िन्दा हैं। ज़िन्दगी की बहारी में हम लोग साथ रहे हैं, अब मौत के इस भयानक फैले मैदान में भी हम साथ हैं।" और उसके ये शब्द यशवन्त के कानों में पड़े तो उसे लगा वह नींद में ज़ुलेख़ा की बात सुन रहा हो।

यों तो चारों ओर नीरवता थी। लेकिन कभी कभी घोड़ों की कराह भरी हिनहिनाहट, कभी दुश्मनों के भारी बूटों की आवाज़ उस नीरवता को भंग भी कर देती। हवा अब भी चारों ओर, सारे मैदान में, मौत का पैग़ाम धीरे धीरे सुनाती बहती चली जाती।

ज़ुलेख़ा ने ज्योति को संभाल कर यशवन्त के पास पहुँचाया। फिर किसी तरह बाबा को भी वहीं लाई। बाबा का अन्तिम समय निकट था। अपने हाथों में ज़ुलेख़ा का हाथ ले बोले, "बेटी, मैं अब जा रहा हूँ। मैं बदला न ले सका। तू यशवन्त का हाथ पकड़ और हो सके तो यशवन्त और जोत को यहाँ से निकाल ले जा।" कहते बाबा का गला भर गया। फिर वह नहीं बोले। नहीं बोल सके। ज़ुलेख़ा सब कुछ समझ गई, लेकिन उसे रुलाई नहीं आई।

बाबा को वैसे ही छोड़ उसने ज़मीन पर बैठ एक जाँघ पर ज्योति और दूसरी जाँघ पर यशवन्त का सिर रख लिया। दोनों के सिर पर हाथ फेरती सोचती रही, अब?

यशवन्त कुछ कुछ जाग चला था। उसे मालूम हो गया था कि ज़ुलेख़ा की जाँघ पर उसका सिर है। बग़ल में ज्योति है। धीमे से उसने कहने की कोशिश की, "ज़ूली, ज्योति!" लेकिन ज़ुलेख़ा ने

ने मना कर दिया। दोनों को यों ही पड़े रहने को सहेज उठी और भाग गई।

सिपाही अब तितर बितर हो गये थे।

ज़ुलेख़ा लौटी तो दो घोड़ों की लगाम उसके हाथ में थी। कहाँ से लाई कहा नहीं जा सकता। लेकिन घोड़े सधे हुये थे, लाशों को कुचलते चलने में भी हिचकते न थे। उसने घोड़ों को खड़ा किया। एक के पीठ पर ज्योति को बहुत सँभाल कर बाँधा और दूसरे की पीठ पर यशवन्त को और वापस आ बाबा का पैर छू, धूल माथे पर लगा बुदबुदाई। अब उसकी कमज़ोरियां ज़ोर मारने वाली थीं, इसलिये वह फ़ौरन वहाँ से चली आई। घोड़ों की लगाम पकड़ी और धीरे धीरे लाशों को कचरती चलने लगी।

घोड़ों के सुमों की आवाज़ और हिनहिनाहट पास वाले दुश्मन सिपाही के कानों तक पहुँची। वह स्वयं मशाल लिये हुये था इसलिये अँधेरे में जो कुछ हो रहा था न देख सका। फिर भी उसे शक हो गया। हाथ में मशाल लिये, तेज़ क़दम से वह, आगे बढ़ा। ज़ुलेख़ा ने क़दम बढ़ाया। आगे आगे दोनों घोड़ों के साथ ज़ुलेख़ा भागी जा रही थी और पीछे पीछे सिपाही मशाल लिये दौड़ा आ रहा था।

कुछ गोल माल है, यह दुश्मन सिपाही की समझ में आ गया! उसने शोर मचाया और दौड़ पड़ा। ज़ुलेख़ा घोड़े पर कूद कर चढ़ एड़ लगाना ही चाहती थी कि सिपाही ने निशाना लगाया। ज़ुलेख़ा कूद पड़ी एक दम सिपाही के ऊपर। जैसे आसमान से बिजली टूटे। सिपाही अपने को संभाले, संभाले कि ज़ुलेख़ा की कटार उसके पेट में घुस गई। ज़ुलेख़ा ने एक, दो, तीन, कई वार किये। सिपाही धराशायी हो गया।

ज़ुलेख़ा अट्टहास कर पड़ी, क्रूर, कठोर, निर्मम!

मशाल की रोशनी में पड़ा दुश्मन तड़प रहा था ! ज़ुलेख़ा ने घूम कर देखा। "दुश्मन, बदला !" वह फिर हँसी और कूद कर अपने घोड़े पर आ गई। उसकी पीठ के पीछे दुश्मन सिपाही मशाल लिये, शोर करते चले आ रहे थे। अपनी छाती की आड़ में यशवन्त को छिपाये, बाँयें हाथ से ज्योति वाले घोड़े को संभाले ज़ुलेख़ा भागी जा रही थी। पैदल दुश्मन पीछे रह गये। ज़ुलेख़ा दूर निकल गई। घोड़ों की टाप की आवाज़ धीमी पड़ने लगी। उसकी प्रतिध्वनियाँ क्षीण से क्षीण तर होती गईं।

दुश्मनों की मशाल के प्रकाश से परे, अपने पीछे लाशों से भरे मैदान को छोड़ती, बाबा, ठाकुर भगवान सिंह, सरदार राम उजागर सिह जैसे स्वजनों से अन्तिम बिदा लेती ज़ुलेख़ा भागती चली गई। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ती जाती उसे लगता वह मौत के मुँह से ज़िन्दगी को छीन कर भागी जा रही है।

और, जब नदी के किनारे, नाव के पास, ज़ुलेख़ा पहुँची तो चाँद धीरे धीरे ऊपर उठ रहा था !

—: o :—